वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

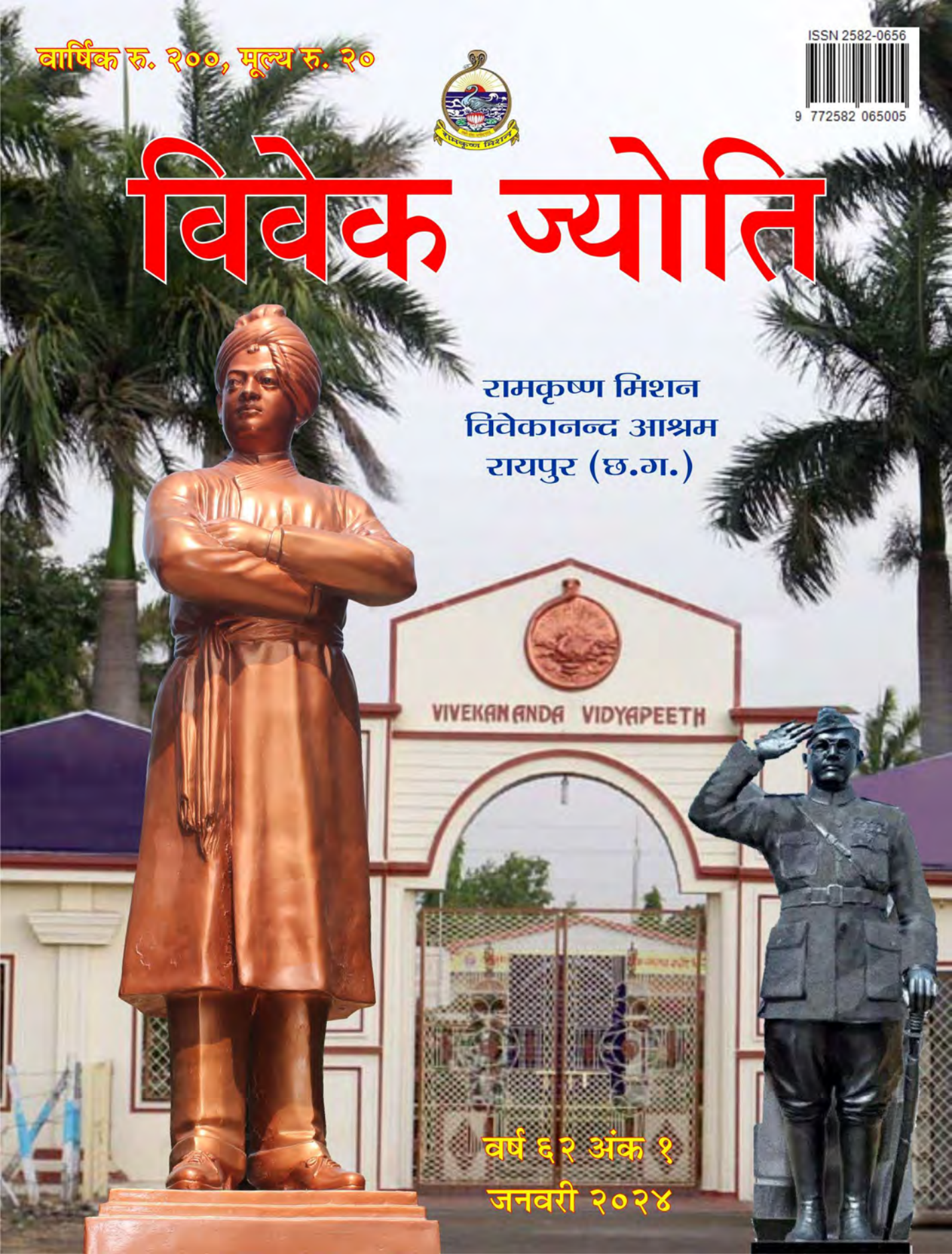

वर्ष ६२ अंक १
जनवरी २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक १

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

पौष, सम्वत् २०८०

जनवरी, २०२४

अनुक्रमणिका

* भारत के पुनरुत्थान के उपाय : विवेकानन्द ६
* सुभाष के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव (स्वामी सुवीरानन्द) ९
* सबकी श्रीमाँ सारदा (स्वामी चेतनानन्द) १६
* (बच्चों का आंगन) आत्मशक्ति का बोध (श्रीमती मिताली सिंह) २१
* इष्ट को मूर्ति नहीं, जाग्रत समझो (स्वामी सत्यरूपानन्द) २३
* (युवा प्रांगण) क्या तुम्हारी कोई प्रतिमा है? (स्वामी गुणदानन्द) २४
* महादेवस्तवनम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) २५
* नारी शिक्षा में श्रीमाँ सारदा का योगदान (रीता घोष) २७
* मूर्त-महेश्वर : स्वामी विवेकानन्द (चम्पा भट्टाचार्य) ३५
* वात्सल्य की त्रिमूर्ति श्रीमाँ सारदा (हरेन्द्र सेराड़ी) ४०
* (काव्य-लहरी) श्रीमाँ सारदा-वन्दना (रामकुमार गौड़) २२
* (कविता) रूप छुपाकर तुम माँ आयी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) २२
* (कविता) युवकों ने ही क्रान्ति मचाई (विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार') २२
* (कविता) हे भगवान ! तू दया का सागर है (बाबूराम परमार) ३२

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५
पुरखों की थाती ५
सम्पादकीय ७
रामराज्य का स्वरूप १३
प्रश्नोपनिषद् २६
श्रीरामकृष्ण-गीता ३२
सारगाछी की स्मृतियाँ ३३
गीतातत्त्व-चिन्तन ३७
साधुओं के पावन प्रसंग ४३
समाचार और सूचनाएँ ४६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा ।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

जनवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०३	श्रीमाँ सारदा देवी
०७	स्वामी शिवानन्द
१२	राष्ट्रीय युवा दिवस
१६	स्वामी सारदानन्द
२४	स्वामी तुरीयानन्द
२६	गणतंत्र दिवस
७,२१	एकादशी

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६२ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें।

– व्यवस्थापक

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति विवेकानन्द विद्यापीठ, भोपाल की है और सुभाषचन्द्र बोस की मूर्ति इंडिया गेट, दिल्ली की है।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७०८.	श्री मुक्तकंठ अग्रवाल, पुरानी बस्ती, रायपुर (छ.ग.)	प्रेस्टिज इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च कॉलेज, इन्दौर
७०९.	,, ,,	लाईब्रेरी, अल्सुम्स इन्फोटेक कॉलेज, नगरी, धमतरी (छ.ग.)

IS:16544
CM/L:7500259884
सुदर्शन सौर भारत का पहला
ISI मानांकन प्राप्त सोलर वॉटर हीटर

MORE STARS MORE SAVINGS
POWER SAVINGS GUIDE
सुदर्शन सौर भारत का पहला
3 स्टार रेटेड सोलर वॉटर हीटर

सुदर्शन सौर सोलार टेक्नॉलॉजी, अनंत ऊर्जाशक्ति का विश्वसनीय स्रोत

आधुनिक भारत में बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने वाला स्त्रोत सौर उर्जा के रूप में अखंड और शाश्वत मात्रा में हमारे पास उपलब्ध है। हमारी प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस प्राकृतिक ऊर्जा स्त्रोत का अगर हम सरलता से उपयोग करते हैं, तो बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर सकते हैं और हमारे देश को बिजली के निर्माण में स्वयं पूर्ण रूप से योगदान दे सकते हैं।

सौर ऊर्जा क्षेत्र में अतुलनीय कार्य करने वाला सुदर्शन सौर भारत का एक विश्वसनीय ब्राण्ड है, जो पर्यावरण को क्षति न पहुँचाते हुए धरती माँ को सदैव हरीभरी रखने में मददगार साबित होता है।

जर्मन टेक्नॉलॉजी द्वारा निर्मित
क्रिस्टल ब्ल्यु™ ग्लास लायनिंग

वैशिष्ट्यपूर्ण क्रिस्टल ब्लू ग्लास लाइनिंग टेक्नॉलॉजी के कारण किसी भी प्रकार के पानी का उपयोग करने पर भी सोलर वॉटर हीटर लंबे समय तक चलता रहता है।

*Terms & Conditions Apply

सौर ऊर्जा पर आधारित
इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम और लायटिंग तथा हीट पंप्स एवं सौर वॉटर पंप्स से संलग्न अन्य कई प्रकार के प्रकल्पों पर हम काम करते है।

SCAN ME

- आजीवन सेवा
- लाखों संतुष्ट ग्राहक
- विस्तृत डीलर नेटवर्क

समझदारी की सोच!

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com

Contact No. : 77700 66008 | E-mail: tollfree@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ जनवरी २०२४ अंक १

श्रीसारदा-स्तोत्रम्

ॐ ह्रीं विशुद्धां प्रकृतिस्वरूपां
आधारभूतां जगदादिशक्तिम्।
दयास्वरूपां जगदात्मिकां वै,
श्रीसारदां त्वां प्रणमामि नित्यम्।।

– ॐ ह्रीं वाच्या, विशुद्ध प्रकृतिस्वरूपा, आधारभूता, संसार की आदि शक्ति, जगदात्मिका, दयास्वरूपा सारदा देवी ! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ।

मोहान्धकारेऽतिममत्वगर्ते
भ्रष्टोऽस्मि मातः परिपाहि मा त्वम्।
श्रीरामकृष्ण-प्रकृति-स्वरूपे,
श्रीसारदे त्वां शरणं प्रपद्ये।।

– ममता रुपी गर्त में, मोह रूपी अन्धकार में मैं मग्न हूँ। माँ ! तुम उससे मेरा उद्धार करो। श्रीरामकृष्ण की शक्तिस्वरूपा माँ सारदा ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ और तुमसे प्रार्थना करता हूँ।

पुरखों की थाती

नास्ति विद्या समं चक्षुः नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।।८१७।।

– (संसार में) विद्या के समान नेत्र नहीं होता, सत्य के समान तप नहीं होता, आसक्ति के समान दुःख नहीं होता और त्याग के समान सुख नहीं होता।

निश्चित्वा यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।८१८।।
(विदुर)

– जो व्यक्ति किसी भी कार्य को निश्चयपूर्वक आरम्भ करता है, कर्म को बीच में नहीं छोड़ता, समय को नष्ट नहीं करता और अपने मन को वश में रखता है, वही विद्वान या ज्ञानी है।

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित् केनचित् सह।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः।।८१९।।
(भागवत)

– हे राजा, इस संसार में कभी, किसी का, किसी के साथ लम्बे समय तक सम्बन्ध नहीं होता। पत्नी और पुत्र की तो बात ही क्या, अपना स्वयं का शरीर तक सर्वदा साथ नहीं देता।

भारत के पुनरुत्थान के उपाय : विवेकानन्द

लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमन्त्र में दीक्षित होकर, भगवान के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के सन्देश, सेवा के सन्देश, सामाजिक उत्थान के संदेश और समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे। (१/४०३)

आशा तुम लोगों से है – जो विनीत, निराभिमानी और विश्वासपरायण हैं। ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं, उससे कुछ नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो – वह अवश्य मिलेगी। मैं बारह वर्ष तक हृदय पर यह बोझ लादे और सिर पर यह विचार लिए बहुत से तथाकथित धनिकों और अमीरों के दर-दर घूमा। हृदय का रक्त बहाते हुए मैं आधी पृथ्वी का चक्कर लगाकर इस अजनबी देश में सहायता माँगने आया। परन्तु भगवान अनन्त शक्तिमान है – मैं जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस देश में भूख या जाड़े से भले ही मर जाऊँ, परन्तु, युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथी (भगवान् कृष्ण) के मन्दिर में, जो गोकुल के दीन-हीन ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्धावतार-काल में अमीरों का निमन्त्रण अस्वीकार कर एक वारांगना के भोजन का निमन्त्रण स्वीकार किया और उसे उबारा। जाओ उनके पास, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महाबलि दो, अपने समस्त जीवन की बलि दो – न दीनहीनों और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान् युग युग में अवतार लिया करते हैं और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। और तब प्रतीक्षा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। (१/४०४)

भारत तभी जागेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे, जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं। मैंने अपने जैसे क्षुद्र जीवन में अनुभव कर लिया है कि उत्तम लक्ष्य, निष्कपटता और अनन्त प्रेम से विश्व-विजय की जा सकती है। ऐसे गुणों से सम्पन्न एक भी मनुष्य करोड़ों पाखण्डी एवं निर्दयी मनुष्यों की दुर्बुद्धि को नष्ट कर सकता है। (६/३०७)

सम्पादकीय

दिव्य लीलाकारिणी माँ !

हे जगदम्बे ! तेरी लीला को कौन जान सकता है – को हि विज्ञातुमर्हति। ब्रह्मा-विष्णु-शिव, सुर-असुर, नर-किन्नर, यक्ष-गन्धर्व, संसार के समस्त प्राणी तेरी माया से विमोहित हो रहे हैं। तेरी माया से विमुग्ध हो अचेत हो रहे हैं। तब इस विषम विमुग्ध-विमूढ़ दशा में तेरे सत्यस्वरूप का बोध होना, क्या सम्भव है? तेरी दिव्य लीला का बोध होना, उस लीला-अमृत-सिन्धु में अवगाहन कर दिव्य आनन्द की अनुभूति करना, क्या सामान्य माया-विमुग्ध-विमूढ़, विषय-मद-मत्त व्यक्ति के लिए सम्भव है? सामान्य दृष्टि से तो वह सम्भव नहीं है। लेकिन तेरी अभयदायिनी सान्त्वना वाणी का स्मरण कर के हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं, 'मैं तेरी माँ हूँ', यही सम्बल है। गिरीशचन्द्र घोष की जिज्ञासा पर कि 'तुम कैसी माँ हो', तो तुमने वात्सल्यमयी वाणी में कहा था – ''मै सच्ची माँ हूँ। गुरु पत्नी नहीं, मुँहबोली माँ नहीं, कहने की माँ नहीं, सत्य जननी हूँ।''[१] इस प्रकार अपनी सन्तानों पर करुणाविगलित होकर कृपा करने हेतु स्वयं परम ब्रह्मस्वरूपिणी माँ सारदा ने कभी-कभी अपनी दिव्य लीलाओं को उन सन्तानों के समक्ष अभिव्यक्त किया। उस परम लोकमंगलमयी दिव्य-लीला से उन भक्तों के जीवन में ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास, अटूट श्रद्धा की उद्‌भावना हुयी, जो उनके जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हें सान्त्वना प्रदान करती रही, उन्हें प्रेरित करती रही और परमेश्वरी की दिव्य-लीला की बार-बार स्मृति से उनकी मनोदशा को उच्च अवस्था में ले जाकर शुद्ध-ईश्वरीय लीला के आनन्दरसामृत में निमज्जित करती रही।

माँ का सम्पूर्ण जीवन अद्‌भुत लीलापूर्ण है। उनका जीवन संसार में संसारियों की तरह दिखते हुए भी सदा संसारातीत, है, अलौकिक है, दिव्य है। एक सामान्य ब्राह्मण परिवार में जन्म, बचपन से गृहकार्य में कुशल, छोटे भाई-बहनों का उत्तरदायित्व, माता-पिता की सहायता, ग्रामीणों से प्रेम, बड़ी होने पर विवाह, पति-सेवापरायण, ससुराल में सासु की सेवा में निरत, दक्षिणेश्वर में आगत भक्तों की अथक विभिन्न सेवायें, पगली मामी, राधू आदि का पारिवारिक दायित्व का भार-ग्रहण आदि-आदि क्रियाएँ उनके लोक-व्यवहार में दिखती हैं, जो एक साधारण गृहिणी के कर्तव्य हैं। लेकिन श्रीमाँ सारदा का जीवन साधारण में असाधारण, लौकिक में अलौकिक था। इसके बहुत-से दृष्टान्त हैं। लेकिन हम उन कुछ चुने हुए दृष्टान्तों को प्रस्तुत करेंगे, जो उन्होंने साधारण लोगों के सम्मुख ही प्रकट किया था।

निष्ठुर-दस्यु मोहिनी माँ

सर्वविदित घटना है। जब श्रीमाँ गंगा-स्नान के लिए कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर जा रही थीं, तब तेलो-भेलो के मैदान में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना घटी। माँ की संगिनियाँ उन्हें अकेले छोड़कर इस आशा से आगे बढ़ गयीं कि वह धीरे-धीरे बाद में तारकेश्वर पहुँच जायेगी। लेकिन सूर्यास्त हो गया। तालवृक्षों की घनी छाया से मैदान में अँधेरा होने लगा। निर्जन भावी संकट से भयभीत श्रीमाँ अकेली उस मार्ग से सोचती हुई चली जा रही थीं। तभी उन्होंने देखा कि काला, लम्बा, हाथों में चाँदी के कंकण पहने, घने घुँघराले बालोंवाला, कन्धे पर बड़ी-सी लाठी लिए एक व्यक्ति चला आ रहा है। माँ समझ गयीं कि यह दस्यु है। वे डर से ठिठककर खड़ी हो गयीं। दस्यु ने भयभीत करने हेतु कड़े स्वर में पूछा – इस समय यहाँ कौन खड़ी है? कहाँ जाओगी?'' श्रीमाँ ने उत्तर दिया – 'पूरब'। दस्यु ने कहा – ''यह पूरब का रास्ता नहीं है, उस रास्ते से जाना पड़ेगा।'' श्रीमाँ तब भी स्थिर खड़ी रहीं। तब वह दस्यु समीप आ गया तथा माँ के मुख को देखकर उस नर-घातक के मन में परिवर्तन हो गया। उसने माँ की ओर देखकर कहा – ''डरो मत, मेरे साथ एक महिला है।'' माँ ने देखा कि सचमुच ही एक महिला आ रही है। तब माँ ने कहा – ''पिताजी, मेरे साथी मुझे छोड़कर चले गये हैं। मैं भी पथ भूल गयी हूँ। बड़ी कृपा होगी, यदि तुम मुझे उनके पास पहुँचा दोगे... आदि। इसके बाद दस्यु-पत्नी के आने पर माँ ने कहा – ''माँ ! मैं तुम्हारी पुत्री सारदा हूँ। साथियों के छूट जाने से घोर विपत्ति में पड़ी थी। भाग्यवश तुम और पिताजी आ गये, नहीं तो क्या करती, यह मैं नहीं कह सकती।[२] माँ के ऐसे निश्छल प्रेमपूर्ण व्यवहार से उस दस्यु-दम्पती के विचार बदल गये और उन लोगों ने माँ की बहुत सेवा-सहायता की, यह सर्वविदित है।

मन में जिज्ञासा होती है कि इतने क्रूर हिंसक दस्यु का मन शीघ्र ही कैसे परिवर्तित हो गया? क्या वह केवल माँ की मधुर वाणी से मोहित हो गया था? इसका प्रत्युत्तर स्वयं

श्रीमाँ ने भक्तों को बातचीत के प्रसंग में दिया है, जो यहाँ उल्लेखनीय है। श्रीमाँ ने स्वयं उस बागदी दम्पती से पूछा था – ''अरे, तुम मुझे इतना प्रेम क्यों करते हो?'' उनलोगों ने उत्तर दिया था – ''तुम तो साधारण नारी नहीं हो। हम लोगों ने तुम्हें काली के रूप में देखा है।'' श्रीमाँ ने उनलोगों की बात काटते हुए कहा – ''अरे, वह तुमने क्या देखा?'' श्रीमाँ की वाणी से तनिक भी विचलित न होकर उनलोगों ने विश्वास तथा अनुयोग से कहा – 'नहीं बेटी, हम लोगों ने सत्य देखा है। हमें पापी समझकर तुम अपना रूप छिपा रही हो।''[३] इस प्रकार माँ ने एक बागदी-दम्पती को अपना काली रूप दिखाकर, अपनी अद्‌भुत लीला से उनके मन को सम्मोहित कर लिया।

जब मथुर बाबू ने श्रीरामकृष्ण को काली और शिव के रूप में देखकर अपने भ्रम के निवारणार्थ उनसे वास्तविकता के विषय में करबद्ध जिज्ञासा की, तो श्रीरामकृष्ण ने स्वीकार कर लिया। नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) के संशय पर उन्होंने स्पष्ट कहा – 'जो राम, जो कृष्ण, वही इस शरीर में श्रीरामकृष्ण है।' अन्य बहुत से दृष्टान्त हैं, जहाँ श्रीरामकृष्ण की सहज स्वीकृति है। इसी प्रकार जब नारदजी को भगवान श्रीकृष्ण के सामान्य जीवन को देखकर संशय और दुख होता है, तब भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता।
तच्छिक्षयंल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः।।

– हे देवर्षि ! मैं ही आदि पुरुष धर्म का कर्त्ता, वक्ता और उसका अनुमोदक हूँ... आदि। उन्होंने भी अपने स्वरूप का परिचय देकर देवर्षि को शोकमुक्त किया। लेकिन श्रीमाँ की यह विशेषता है कि वे कभी भी अपने दिव्य रूप को सहजता से सबके समक्ष स्वीकार नहीं करतीं। माँ न सहजता से स्वरूप अभिव्यक्त करती हैं, न रूप। यदि किसी ने देख लिया और पूछ दिया, तो जल्दी स्वीकार भी नहीं करतीं। इस सम्बन्ध में माँ के भतीजे शिबू दादा की घटना उल्लेखनीय है – एक बार माँ कामारपुकुर से जयरामबाटी आ रही थीं। शिबू दा उनके साथ थे। वे कपड़े की गठरी लेकर साथ-साथ चल रहे थे। अचानक वे रूक गये। माँ ने उन्हें आने को कहा। उन्होंने माँ से पूछा – ''क्या बता सकती हो कि तुम कौन हो?'' माँ ने उत्तर दिया – ''मैं कौन हूँ, मैं तेरी चाची हूँ।'' इस पर शिबू दा ने कहा – ''तब जाओ, अब तो घर के पास आ गई हो, मैं इससे आगे नहीं जाऊँगा।'' माँ ने पुनः पूर्वोक्त वाक्य की ही पुनरावृत्ति की। फिर शिबू दा का वही न जाने का हठ। तब माँ ने कहा – ''लोग मुझे काली कहते हैं।'' शिबू ने कहा – 'काली तो? सच?' माँ ने कहा – 'हाँ'। तब शिबू दा खुश होकर साथ-साथ जयरामबाटी आये। इस प्रकार माँ ने बड़ी कठिनाई से अपना दैवी रूप स्वीकार किया।[४]

एक दूसरी घटना है। शिबू दादा श्रीमाँ की आज्ञा से जयरामवाटी से कामारपुकुर जा रहे थे। ब्रह्मचारी वरदा उन्हें आमोदर नदी तक पहुँचा आये। थोड़ी देर बाद शिबू दादा फिर वापस आ गये और माँ के चरणों में सिर रखकर रोते-रोते कहने लगे – ''माँ, मेरा क्या होगा बताओ, मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ। माँ उन्हें समझा रही थीं – शिबू उठ, तुम्हें फिर क्या चिन्ता है? तूने ठाकुर की इतनी सेवा की, उन्होंने तुझे कितना स्नेह किया। तुझे फिर चिन्ता क्या है? तू तो जीवन्मुक्त हो गया है।'' शिबू दा तब भी कह रहे थे, – ''नहीं तुम मेरा भार लो और तुमने जो कहा था, तुम वही हो या नहीं, बताओ।'' माँ जितना ही उनके मस्तक और चिबुक पर हाथ फेरकर प्यार करतीं और सान्त्वना देतीं, उतना ही शिबू दादा आँसू बहाते हुए कहते जाते, ''कहो कि तुमने मेरा सब भार लिया है और तुम साक्षात् काली हो या नहीं?'' शिबू दादा की इस प्रगाढ़ व्याकुलता को देखकर उनमें भावान्तर हो गया। पास में खड़े वरदा महाराज को स्पष्ट जान पड़ा कि श्रीमाँ उस समय सामान्य मानवी नहीं हैं। शिबू दादा के सिर पर हाथ रखते हुए श्रीमाँ ने गम्भीर भाव से कहा – ''हाँ वही हूँ।'' शिबू दादा घुटनों के बल बैठकर, दोनों हाथ जोड़कर 'सर्वमंगल मांगल्ये' इत्यादि स्तोत्र का पाठ करने लगे। श्रीमाँ ने उनका चिबुक स्पर्श कर चूमा। शिबू दादा भी आँसू पोछकर बगल में गठरी दबाये आनन्द से चल पड़े। माँ की आज्ञा से वरदा फिर उनके हाथ से गठरी लेकर साथ चले। गाँव के बाहर आकर शिबू दादा प्रफुल्ल हो वरदा से कहने लगे – ''भाई, माँ साक्षात् काली हैं। वे ही कपालमोचनी हैं। उनकी ही कृपा से मुक्ति मिलती है, समझे !''[५] इस प्रकार माँ सदा अपना दैवी रूप छिपाये रहती हैं। कभी सहजता से स्वीकार नहीं करतीं। भगवान श्रीरामकृष्ण कहते थे, वह (माँ सारदा) राख ढकी हुई बिल्ली की तरह है।

केवल 'माँ' पुकारो

श्रीमती शैलबाला देवी ने जब एक दिन श्रीमाँ से जिज्ञासा की – ''माँ, आपने ठाकुर का जप तो मुझे बता दिया है,

शेष भाग पृष्ठ २० पर

सुभाष के छात्र-जीवन में स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

स्वामी सुवीरानन्द

महासचिव

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवाद : स्वामी उरुक्रमानन्द

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक द्रष्टा की भाँति स्वामी विवेकानन्द ने इतिहास में घटित सभ्यताओं के उत्थान और

पतन का अनुभव किया कि इस बार केन्द्र में होगा हमारा भारतवर्ष। उनका वह आह्वान, जिसे उन्होंने स्वदेश में घूम-घूमकर गाँवों, नगरों एवं प्रान्तों में गूँजायमान किया, आज उसे कौन कार्यरूप में परिणत करने हेतु स्वीकार करेगा? इस आह्वान को स्वीकार करने का अर्थ ही यह होगा कि स्वीकार करनेवाले को प्रतिक्षण आत्मत्याग, दुख, विपदा और ताप को सहर्ष स्वीकार कर लेना होगा। स्वामी विवेकानन्द के भारत सम्बन्धी इस स्वप्न के आह्वान को स्वीकार करने हेतु ही मानो नेताजी सुभाषचन्द्र का आविर्भाव हुआ था। स्वामी विवेकानन्द की वाणी कुछ इस प्रकार गुँजायमान हुई थी – Brave, boldmen, these are what we want. What we want is vigour in the blood, strength in nerves, iron muscles and nerves of steel, not softening namby pampy ideas. Avoid all these. Avoid all mystery' (Complete works of swami Vivekannda, advaita Ashrama, Kolkata, Vol.3 page 278,) Your country requires heroes, be heroes ! (ibid Vol. 5 page 51) Your duty is to go on working and then everything will follow of itself. (ibid Vol 7. page 247) उत्तर दिया मानो सुभाषचन्द्र ने – 'अनादिकाल से हम लोग मुक्ति का गीत गाते आ रहे हैं। बचपन से ही हमारी धमनियों में मुक्ति की कामना मानो प्रवाहित होती है। जन्म के समय हम जो क्रन्दन करते हैं, वह तो मात्र इस पार्थिव बन्धन से मुक्त होने हेतु एक विद्रोह ही होता है। शैशव काल में क्रन्दन करना ही हमारा बल होता है, परन्तु यौवन में हमारा सम्बल बाहुबल और बुद्धिबल हुआ करता है। हमारी इस समवेत शक्ति द्वारा ही समाज, राष्ट्र, विज्ञान, साहित्य, कला युग-युग में और देश-देशान्तरों में गढ़ता है। परन्तु जब हमलोग रुद्रमूर्ति धारण करके ताण्डव नृत्य आरम्भ करते हैं, तब उस ताण्डव नृत्य के एकमात्र पदविक्षेप से तत्काल ही कितने समाज, कितने साम्राज्य धूल में मिल जाते हैं।'

'इतने दिनों के बाद हमने अपनी शक्ति को पहचाना है, अपने धर्म को भी पहचान लिया है। अब हम पर भला कौन शासन और शोषण कर सकता है? इस नवजागरण

में सबसे बड़ी बात और सबसे बड़ी आशा है – नवयुवकों की आत्मप्रतिष्ठा। इन नवयुवकों में विद्यमान प्रसुप्त आत्मा जब जग गई है, तब जीवन के सभी क्षेत्रों में और सब ओर इस नवयौवन का नवीन आयाम दृष्टिगोचर होगा। यह नवयुवकों का आन्दोलन सार्वभौम और सर्वव्यापी है। आज पृथ्वी के सभी देशों में, विशेषत: जहाँ बुढ़ापे की शीतल छाया दिखाई देती है, वहीं पर युवा-वर्ग सिर ऊँचा करके खड़ा होता है। यह युवा-वर्ग इस धराधाम पर किस दिव्यालोक को देदीप्यमान करेगा, यह भला कौन बता सकता है? हे मेरे तरुण साथियो! तुम लोग उठो, जागो, उषा की किरण दृष्टिगोचर हो रही है।'' (सुभाषचन्द्र तरुणेर स्वप्न आनन्द पब्लिशर्स, पृ.१०)

२३ जनवरी, १८९७ ई. को सुभाषचन्द्र का जन्म उड़ीसा के कटक शहर में हुआ था। जन्म-ग्रहण के बाद १५ वर्षों तक उन्हें वाणीरूपी विवेकानन्द-रश्मि के संस्पर्श में आने हेतु प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। स्वामी विवेकानन्द को अपने जीवन का आदर्श मानने के पूर्व उनके जीवन में एक और पुरुष का आगमन हुआ था, वे उनके स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री बेनीमाधव दास थे। श्री बेनीमाधव दास जी ने सुभाष को एक अस्पष्ट नैतिक बोध, प्रकृति-प्रेम तथा सौन्दर्य-बोध हेतु प्रेरित किया था। इस बात का स्मरण कर सुभाष ने बाद में लिखा था – प्रकृति का ध्यान करके मेरी कितनी नैतिक उन्नति हुई थी, वह तो मैं जानता नहीं, परन्तु इसका एक विशेष लाभ यह हुआ था कि प्रकृति का विचित्र एवं प्रच्छन्न सौन्दर्य-बोध मेरे मानस-पटल पर समा गया था तथा मेरा मन सहज ही एकाग्र होना सीख गया था।

अपनी इस कौमार्य अवस्था में सुभाष ने एक गभीर संकट का सामना किया था। एक ओर तो चिरपरिचित पार्थिव जीवन के प्रति आकर्षण था और दूसरी ओर, अंधानुयायी आकांक्षाओं के विरोध में उनके विवेक का परम विद्रोह था। ऐसे समय उन्नति के परम शिखर पर आरूढ़ होने हेतु जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, उसे मानसिक रूप से विपन्न हुए बेनीमाधव दास द्वारा निर्देशित आदर्श से वे प्राप्त नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि प्रकृति-उपासना से मानसिक उन्नति तो एक प्रकार से हो जाती है, परन्तु वह मेरे लिए यथेष्ट नहीं थी, जिस वस्तु को मैं खोज रहा था, वह थी एक मौलिक नीति जिसका आश्रय लेकर मेरा समस्त जीवन ही गढ़ जाता। यौवनकाल में यह एक परम संकट की घड़ी थी। ऐसे समय में जब जीवन दिग्भ्रमित हो विपन्न हो रहा हो, तब कौन वह पथ प्रदर्शित करेगा, जिस पर महापुरुष चला करते हैं।

अस्थिर मन के अन्तर्जगत के इस सन्धिकाल में सुभाष का सामना स्वामी विवेकानन्द के आदर्श से हुआ था, जिसने सुभाषचन्द्र को नेताजी में परिणत कर दिया था। अपनी आत्मकथा में उन्होंने इन्हीं सब बातों का विस्तार से उल्लेख किया है – 'मेरे एक अभिन्न मित्र सुहितचन्द्र मित्र मेरे पड़ोसी हुए थे, जो शहर में नये-नये ही आये थे। मैं उनके घर प्राय: ही जाया करता था। एक दिन उनकी संग्रहित पुस्तकों को देखते-देखते मेरी दृष्टि पड़ी स्वामी विवेकानन्द साहित्य पर। कुछ पृष्ठों को उलटते ही मैं समझ गया कि इनमें ऐसा कुछ है, जिसे मैं इतने दिनों से खोजते-खोजते परेशान हो रहा था। उन पुस्तकों को मित्र से माँगकर मैं घर ले आया और बड़ी उत्कण्ठापूर्वक उन्हें पढ़ने लगा। उनमें निहित विचार मेरी मज्जा तक पहुँच गये। पूर्व में अर्जित प्रकृति के सौन्दर्य के उपासक को आज एक नवीन आदर्श प्राप्त हो गया था।'

विवेकानन्द को अपने जीवन में देवतारूप में परम श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने में सुभाषचन्द्र को किंचित् भी संशय नहीं हुआ था। इसके पश्चात् अपने जीवन-पथ पर चलते समय जिस किसी भी संकटपूर्ण स्थिति में, जिस किसी भी दुर्भाग्य में, जिस किसी भी अन्धकारमय स्थिति में तथा जैसी भी उज्ज्वलता में विवेकानन्द ही उनके मन-मन्दिर के अधिदेवता रूप में विराजमान रहा करते थे।

केवल १५ वर्ष की आयु में ही विवेकानन्द ने सुभाष के जीवन में एक आन्दोलन ला खड़ा कर दिया था। यद्यपि विवेकानन्द की शिक्षा का यथार्थ तात्पर्य समझने में, अथवा उनके व्यक्तित्व के विराटत्व को ठीक तरह से समझने में उन्हें और भी अधिक समय लगा था, तथापि सुभाषचन्द्र के मन में विवेकानन्द की चिन्तनधारा की एक ऐसी छाप पड़ गयी थी, जो अमिट थी। स्वयं की विचार बुद्धि का प्रयोग करके, मन के स्थिर आलोक में विवेकानन्द को एक पूर्ण विकसित आविर्भाव को चिह्नित करने में सुभाषचन्द्र ने कभी सन्देह नहीं किया। उनके मन में जितने भी प्रश्न उठा करते थे, उनका समुचित समाधान उन्हें विवेकानन्द के भीतर ही मिल जाया करता था। विवेकानन्द को अपने जीवन का आदर्श मान लेने के पश्चात् उनके भीतर पूर्व में बस रहे जितने

भी आदर्शपरक विचारधारा थी, उन सबका अब तिरोधान होने लगा था। उन्होंने स्वयं ही लिखा था – 'पूर्व में अपने प्रधानाचार्य को आदर्शरूप में अब वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। वे ऐसा समझ रहे थे कि वे दर्शनशास्त्र विषय में आगे की पढ़ाई आरम्भ करेंगे। परन्तु विवेकानन्द के द्वारा जो पथ प्रदर्शित हुआ था, सुभाष अब उसी पर अग्रसर होने का प्रयत्न करने लगे।' (बसु सुभाषचन्द्र भारत पथिक, नेताजी रिसर्च ब्यूरो, नेताजी भवन, कोलकाता १३७२, पृ. ३८)

जीवन के इस सन्धि-पथ पर खड़े होकर सुभाष ने यह उपलब्धि की थी कि भारत के लिए एक नई उषाबेला को लाने हेतु उनके सदृश नवयुवकों को प्रेरणा देनेवाले एक दिव्य अलौकिक पुरुष की आवश्यकता है। तत्कालीन भारतवर्ष पूरी तरह से तमसाच्छन्न हो गया था और सुभाष ने देखा कि ऐसे संकटापन्न देश को केवल स्वामीजी की दिव्य दृष्टि एवं अपराजेय व्यक्तित्व तथा विचारधारा ही परित्राण कर सकती है।

सुभाष ने जो आत्मकथा लिखी थी, उसके अनुसार विवेकानन्द से प्राप्त शिक्षा ने उन्हें तीन कार्यों को करने हेतु उद्यत किया था – १. पारिवारिक शासन के विरुद्ध विद्रोह २. योगसाधना करने हेतु संन्यास धर्म के प्रति तीव्र आकर्षण। ३.सेवाकार्य।

दैनन्दिन साधारण जीवन-धारा से उपरोक्त तीनों बातों को वे एकदम अलग समझते थे। दूसरी ओर, एक सामान्य जीवन-यापन करने की धारणा भी साथ-ही-साथ उनके मानस में चल रही थी।

१. पारिवारिक शासन के विरुद्ध विद्रोह – ब्रह्मचर्य, कृच्छ्र साधन, ध्यान व योग आदि में निमग्न चेष्टा के कारण उनकी एक ऐसी मानसिक अवस्था हो गयी थी कि घर के लोग समझने लगे थे कि लड़के का मस्तिष्क ही खराब हो गया है। कोई आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं हो रही थी, इसीलिए आध्यात्मिक गुरु के अनुसंधान में लग गये। ९० वर्ष के एक साधु के संस्पर्श में आने के बाद वे स्तोत्र-पाठादि और निरामिष भोजन करने लगे थे। उन वृद्ध साधु ने उन्हें माता-पिता के वश में रहने की शिक्षा दी थी। उन्होंने बाद में लिखा था कि इस तरह वश में रहने की शिक्षा का उन्हें त्याग करना ही होगा। सुभाष कहते थे कि जितना ही माता-पिता उन्हें वश में करने की चेष्टा करते थे, उतने ही वे अनियन्त्रित होते जाते थे। जब उन लोगों की सभी चेष्टाएँ असफल हो गयीं, तब माँ ने रुदन करने का उपाय अपनाया। उससे भी उनके मन में किसी भी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं हो पाई। वे और अधिक उदासीन और अन्यमनस्क रहने लगे। इस प्रकार माता-पिता की अवहेलना करना उनके स्वभाव के विरूद्ध था और उन्हें कष्ट देना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। इसका कारण यह है कि पिता ही स्वर्ग, पिता ही धर्म तथा जननीजन्मभूमिश्च आदि पढ़ते-पढ़ते उनका बचपन बीता था। (भारत पथिक नेताजी रिसर्च ब्यूरो, नेताजी भवन, कोलकाता १३७२, पृ. ३३ व ४३)

सुभाष के एक सहपाठी और पड़ोसी ने एक बार रात्रि भोज के लिए उन्हें निमन्त्रित किया था। उनकी माता ने उन्हें जाने से मना कर दिया, क्योंकि वह नीच जाति का था। माता की आज्ञा के विरुद्ध होकर भी उन्होंने अपने मित्र के यहाँ जाना स्वीकार किया था। माता-पिता की ऐसी अनेकानेक निषेधाज्ञाओं का उल्लंघन उन्होंने किया था। इस विशेष गुण को उन्होंने विवेकानन्द की शिक्षाओं से ही पाया था, जिसमें उन्होंने कहा था – आत्मविकास के लिए विद्रोह का बहुत प्रयोजन होता है। जब शिशु का जन्म होता है, तब वह चारों ओर के बन्धन के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण रुदन करता है।

विवेकानन्द ने केवल माता-पिता के बन्धन से ही सुभाष को मुक्त नहीं किया था, अपितु सुसंस्कारों से भी उन्हें मुक्ति दिलाई थी। १४ फरवरी, सन् १८९७ ई. को अपना व्याख्यान 'भारत का भविष्य' में स्वामीजी ने अपने देशवासियों की सेवा के सम्बन्ध में कहा था। स्वामीजी ने मुक्तकण्ठ से देशवासियों की अन्तरात्मा को झकझोरते हुए उनका देशसेवा हेतु आह्वान किया था – 'आगामी ५० वर्षों के लिए हमारी भारत माता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। अन्यान्य देवी-देवताओं को कुछ समय तक भूलना ही बेहतर होगा। अन्यान्य देवता इस समय सो रहे हैं। इस समय केवल यह देशरूपी देवता ही जाग्रत है, हर ओर उसके हाथ-पाँव हैं, वही सर्वव्यापी हो रहा है। अन्य किस

देवता के पीछे तुम लोग दौड़ रहे हो और तुम्हारे सम्मुख जो सर्वव्याप्त देवता फैला हुआ है, उसको तुम देख नहीं पा रहे हो क्या?

यह कैसा एक अद्‌भुत आह्वान था और कितना अनोखा स्वप्न था और कितनी प्रचण्ड प्रेरणा थी ! विवेकानन्द ने कहा था और सुभाषचन्द्र ने इसे सुना था। एक था अदृश्य युगनायक और दूसरा दृश्यमान देशनायक !

२. योग साधना – विवेकानन्द साहित्य का पठन-पाठन करने के उपरान्त सुभाष योग-साधना करने में मग्न हो गये थे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा था – पढ़ाई-लिखाई छोड़कर अब मेरा एक ही काम है – केवल योग-साधना में मग्न हो जाना। परन्तु योग सिखला सके, ऐसा कोई गुरु मुझे नहीं मिला। केवल पुस्तक पढ़कर जितना भी सीख सका, उसी से मैं योगाभ्यास किया करता था। (भारत पथिक नेताजी रिसर्च ब्यूरो, नेताजी भवन, कोलकाता १३७२, पृ. ४४)। योगाभ्यास के निमित्त वे विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ किया करते थे। इसके अतिरिक्त, वे कृच्छ्र साधन का भी अभ्यास करते थे, जिसमें निरामिष आहार तथा बड़ी जल्दी सुबह उठा करते थे। रामकृष्ण परमहंस के शिक्षानुसार वे ध्यान किया करते थे मन में, वन में अथवा कोने में। अनेक मास की साधना के फलस्वरूप भी उन्होंने किसी अलौकिक शक्ति का अपने भीतर आविर्भाव नहीं पाया। परन्तु इसके कारण उनका आत्मविश्वास तथा आत्मसंयम बहुत कुछ बढ़ गया था। उन्होंने अपनी मानसिक शान्ति का स्पष्ट अनुभव किया था, किन्तु इसके अलावा और कुछ भी नहीं हो पाया।

३. सेवाधर्म –

बहुरूप में तुम्हारे सम्मुख ईश्वर ही हैं,
और तुम कहाँ उसे व्यर्थ में ढूँढ़ रहे हो,
जो सब जीवों से प्रेम करता है,
वही यथार्थ में ईश्वर की सेवा करता है।

स्वामी विवेकानन्द की यह जीवसेवा ही ईश्वरसेवा है, इस आदर्श ने परवर्तीकाल में सुभाषचन्द्र को इसी सेवाकार्य में नियोजित किया था। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा था कि धर्मचर्चा का अर्थ वे केवल योगाभ्यास ही मानते थे, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि योगाभ्यास करके उन्होंने देख लिया था कि आध्यात्मिक जीवन-यापन करने के लिए सेवायोग में नियुक्त होना आवश्यक होता है।

स्वामीजी ने भारतवासियों को कहा था – मूर्ख भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी मेरे भाई हैं। दरिद्र, मूर्ख, चाण्डाल, सभी मेरे उपास्य देवता हैं। सुभाषचन्द्र लिखते हैं – दरिद्र की सेवा करने के लिए विवेकानन्द ने प्रत्येक व्यक्ति को निर्देश दिया है – क्योंकि उन्होंने कहा था कि दरिद्र के रूप में ही ईश्वर हमारे सामने आविर्भूत होते हैं और दरिद्र-सेवा ही नारायण-सेवा होती है। इसे स्मरण करके सुभाषचन्द्र की दरिद्र, भिखारी और परिव्राजक साधुओं के प्रति बड़ी सहानुभूति हो गयी थी। ऐसा कोई भी उनके द्वार पर आने से वे जो कुछ भी हाथ में आता, उसे नि:संकोच दे दिया करते थे।

पाठशाला में पढ़ते समय ही बीच-बीच में वे घर से लापता हो जाया करते थे। खोज करने पर यह जाना था कि शहर की किसी झोपड़पट्टी में वे हैजा और चेचक के रोगियों की सेवा में रत रहा करते थे। इसके अतिरिक्त, सुभाषचन्द्र के मुख से सुनकर बाद में नरेन्द्रनारायण ने लिखा था – 'रात के अवसान के बाद एकदम सुबह शव का दाह करके सुभाष घर लौटते थे, उनकी माता सारी रात भोजन के लिए उनकी प्रतीक्षा करती हुई जागती रहती थीं। घोर अन्धकार में चुपके-से माँ को द्वार खोलने के लिए पुकारते थे, उनकी आँखें भाव-विभोर रहा करती थीं, मुख पर एक मादकता का भाव रहता था, सारे शरीर में हरिनाम संकीर्तन का भाव उमड़ता रहता था। चरणदास बाबाजी के मठ से कीर्तन समाप्त करके इसी तरह वे रात जागकर लौटते थे। माता ऐसे पुत्र को पाकर आँचल में समा लेती थी। उनकी माता के संग में एक और महिला रहा करती थी, जो सुभाष की धाय माता शारदा थी।'' (नरेन्द्रनारायण चक्रवर्ती, नेता जी संग ओर प्रसंग, ग्रन्थ प्रकाश, कोलकाता १९६६, द्वितीय खंड पृ. ४०) (**क्रमशः**)

रामराज्य का स्वरूप (१०/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

गोस्वामीजी उससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि हम जिन्हें जड़ मानकर तोड़ने-फोड़ने में प्रवृत्त होते हैं, वृक्षों की डाल काट लेने में, वृक्षों के साथ चाहे जैसे व्यवहार करने में हमें संकोच नहीं होता, किन्तु न तो कोई ऐसा जड़ बचा, न कोई चेतन बचा, न मनुष्य, न पशु, न पक्षी, न कोई वनस्पति, जो रामराज्य में सुखी न हो। इसलिए राज्याभिषेक के समय भगवान श्रीराघवेन्द्र ने कहा कि नहीं, नहीं, बन्दर पहले स्नान करेंगे, राजा पहले स्नान नहीं करेगा। उसके पश्चात् भगवान राम का आदेश पाकर सेवक बन्दरों को स्नान कराने गये, तो श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न बड़ी व्यग्रता से भगवान राम को नहलाने सामने आए। भगवान श्रीराम ने भरत की ओर देखा और कहा, भरत तुम तो सदा से ही मेरे आज्ञाकारी रहे हो, पर आज तो मेरी आज्ञा अनुलंघनीय है, क्योंकि तुम तो समझते ही हो कि अब मैं राजा हूँ। भरतजी ने कहा कि आपकी आज्ञा तो मेरे लिए सदा अनुलंघनीय थी। प्रभु ने श्रीभरत को आदेश दिया, स्नानगृह में प्रभु के स्नान के लिए जो चौकी रखी हुई थी, प्रभु ने श्रीभरत को उस चौकी पर बैठा दिया, आदेश दिया बैठने का। भरत बैठ गये और भरत के बैठ जाने के बाद प्रभु भरत के पीछे खड़े हो गये। ये दो दृश्य हैं, एक अयोध्या के राज्यसभा का, जिसकी झाँकी ध्यान के समय मैं नित्य दोहराया करता हूँ और एक झाँकी है भगवान के स्नानगृह का। अगर स्नानगृह में देखें, तो भरत बैठे हुए हैं आसन पर और भगवान उनके पीछे खड़े हैं। राज्य सभा में देखें, तो प्रभु सिंहासन पर बैठे हुए हैं और श्रीभरत उनके पीछे खड़े हुए हैं। प्रभु से किसी ने पूछ दिया कि इसका अर्थ क्या हुआ? वहाँ राजसिंहासन पर आप विराजमान हुए और श्रीभरत पीछे खड़े हुए हैं और यहाँ श्रीभरत बैठे हुए हैं और आप उनके पीछे खड़े हुए हैं। प्रभु ने कहा, अन्तर यही है। जो लोग सार्वजनिक स्थानों में, सभा में देखेंगे, उनको लगेगा कि राज्य का राजा मैं हूँ और भरत मेरे सेवक हैं। सभा में तो प्रत्येक व्यक्ति पहुँच जाता है, पर स्नानगृह में तो किसी को जाने का अधिकार नहीं होता। लेकिन जो अन्तरंग स्नानगृह में प्रवेश करने का साहस कर सके, तो देखेगा कि राजा तो भरत हैं। वस्तुत: रामराज्य की स्थापना तो भरत के द्वारा ही हुई है और मैं ही उसके पीछे खड़ा हुआ हूँ। इसलिए यदि राजा को पहले स्नान करने का आदेश गुरुदेव देते हैं, तो वस्तुत: वह राजा भी भरत ही है, इसलिए मैं पहले भरत को ही स्नान कराकर, भरत की सेवा कर अपने आपमें धन्यता का अनुभव करूँगा। भगवान राम ने सेवा क्या किया? भगवान राम ने भरत को केवल चौकी पर बैठा ही नहीं दिया, स्नान करा देते तो भी कोई बात थी। गोस्वामीजी की पंक्ति आप पढ़ते हैं –

पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे।
निज कर राम जटा निरुआरे।। ७/१०/४

भगवान श्रीराघवेन्द्र श्रीभरत के पीछे खड़े होकर उनकी जटाओं को सुलझाने लगे। कितना कठिन कार्य है। साधारणत: बाल उलझ जाये, तो उसको सुलझाने में समय लगता। बड़ी सावधानी से वह कार्य किया जाता है। लेकिन जिसकी जटा चौदह वर्षों से उलझती रही है, जिसमें वट वृक्ष का दूध भी लगा हो, प्राचीन परम्परा में जटा में वट का दूध लगा लिया जाता था, तो ऐसी जटा को सुलझाना सरल नहीं होता है।

सुचि सुजान बट छीर मगावा। २/९३/३

अब बालों में अगर वट का दूध लगा लिया जाय और

वह उलझ जाये, तो उसको काटना तो सरल है, पर सुलझाना कठिन है। पर भगवान श्रीराम श्रीभरत के पीछे खड़े होकर क्या करने लगे? – **निज कर राम जटा निरुआरे।।**

भगवान श्रीराघवेन्द्र श्रीभरत की जटा को सुलझाने लगे। अब सूचना आ रही है, राज्याभिषेक की घड़ी में विलम्ब हो रहा है। श्रीभरत ने प्रभु की ओर देखा, बोले प्रभु, आपने तो अपने ही स्वभाव और शील का परिचय दिया है, पर प्रभु, विलम्ब हो रहा है, आप यह कष्ट क्यों कर रहे हैं? इतना विलम्ब होगा, तो राज्याभिषेक की घड़ी टल जायेगी। भगवान श्रीराम ने यही कहा कि भरत, सिंहासन पर बैठने में अगर विलम्ब भी हो तो क्या कठिनाई है? क्यों? बोले राजा सिंहासन पर बैठकर प्रजा की समस्याओं को ही तो सुलझाता है। अयोध्या की जितनी समस्याएँ थी, उसे तो तुम्हीं ने सुलझा दिया। अब सुलझाने के लिये तुम्हारा बाल ही बाकी है, अन्य कोई उलझन बाकी ही नहीं है। अत: मैं यह काम किए बिना छोड़ूँगा नहीं। तुमने तो सब कुछ सुलझा लिया, पर अपनी जटाओं को सुलझाने में तुम सक्षम नहीं हो। हाँ, विवेक तो सुलझाता है, पर प्रेम में उलझना भी एक रस है, जिसे प्रेमी स्वयं सुलझाना नहीं चाहता। भगवान श्रीराघवेन्द्र ने श्रीभरत के प्रति मानो अपनी भावना इस कार्य के द्वारा प्रकट की। इसका अर्थ मानो भगवान श्रीराघवेन्द्र ने, सच्चे अर्थों में रामराज्य की जो भूमिका अयोध्या में बनी, वन में जो रामराज्य की भूमिका बनी, वह भगवान राम के चरित्र के द्वारा बनी, पर अयोध्या में जो रामराज्य बना, वह तो श्रीभरत के द्वारा बना और उसके लिए श्रीभरत ने जो महत्त्वपूर्ण सूत्र चुना, उसका मानो सांकेतिक अर्थ यह है कि पहले जब हम किसी दूसरों की सेवा करना चाहते हैं, किसी दूसरों की पीड़ा दूर करना चाहते हैं, दूसरों का दुख दूर करना चाहते हैं, तो उसके लिए हमारा पहला कर्तव्य है कि पहले हम स्वयं अपने आप को स्वस्थ बनाने की चेष्टा करें। सेवा भी तो दूसरे का वही व्यक्ति कर सकता है, जो स्वयं स्वस्थ है। अगर एक व्यक्ति को टी.बी. हो गई है और दूसरों को वह जल पिलाने की सेवा करे, तो जो प्यासा होगा, वह तो जल पीएगा ही। उनको पीकर संतोष भी होगा। लेकिन अगर टी.बी. से ग्रस्त व्यक्ति जल पिलावेगा, तो वह अपना रोग भी तो सामने वाले व्यक्ति के शरीर में पैठा देगा। आज नहीं, तो कल उस व्यक्ति के शरीर में वे कीटाणु सक्रिय हो जाएँगे। इसी प्रकार से जो व्यक्ति स्वयं स्वस्थ नहीं है, स्वयं जिसके मन में विविध प्रकार के दोष विद्यमान हैं, जिसकी दीनता मिटी नहीं है, जिनके जीवन के दुख मिटे नहीं हैं, जिनके जीवन का दोष स्वयं मिटा नहीं है, वे दूसरों के दुख, दीनता और दोष को दूर करने की चेष्टा करते हैं, तो उस दूर करने की चेष्टा में अपनी बुराई को ही समाज में फैलाते हैं। इसका अनुभव समाज में निरन्तर होते रहता है।

इसलिए श्रीभरत के चित्रकूट यात्रा का मुख्य अभिप्राय यह है कि पहले हम भगवान से स्वयं स्वस्थता प्राप्त करें। भरत की भूमिका स्वस्थता की भूमिका है। एक तो गोस्वामीजी ने महर्षि भरद्वाज के सन्दर्भ की बड़ी मीठी बात कही। महर्षि भरद्वाज के आश्रम में जब श्रीभरतजी गये, तो इतने संकोच में गड़कर बैठ गये कि उनको यह डर लगने लगा कि महर्षि भरद्वाज मुझसे पूछ देंगे कि क्या तुम्हीं वह भरत हो, जिसके कारण श्रीराम को वनवास दिया गया, तो मैं क्या बोलूँगा? संकोच में पड़ गये। महर्षि भरद्वाजजी ने भरतजी का संकोच दूर करने के लिये कहा –

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई।

नहीं, नहीं, तुम संकोच मत करो, हमें सब समाचार पहले से ही मिल चुका है। महर्षि ने सोचा कि मेरी बात सुनकर भरतजी का संकोच दूर हो जायेगा। पर भरतजी ने सोचा कि ये मुझसे पूछते, तो मैं बताता कि वास्तविकता क्या है, पर ये तो पहले से न जाने क्या-क्या सुन चुके हैं, यह तो और भी अधिक लज्जा की बात है और अधिक संकोच में गड़ गये। अब भरद्वाजजी ने सोचा कि ये तो बड़े संकोची हैं, इनका संकोच कैसे दूर करें। तो उन्होंने कहा –

बिधि करतब पर किछु न बसाई।। २/२०५/८

भरत ब्रह्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि इसके कर्तव्य पर किसी का बस नहीं चलता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा की सृष्टि ही ऐसी है, इसमें हर घटना में अच्छाई और बुराई जुड़ी रहती है। लेकिन श्रीभरत का संकोच इससे भी दूर नहीं हुआ। क्योंकि श्रीभरत की वृत्ति साधक की वृत्ति है। इसका अभिप्राय यह है कि साधक प्रत्येक क्रिया-कलाप में ब्रह्मा का दोष देखकर अपने आपको दोषों से मुक्त बना ले कि यह ब्रह्मा की सृष्टि ही गुण-दोषमयी है और यदि हममें दोष है, तो यह स्वाभाविक है, तब तो साधक के जीवन में कभी दोषों का विनाश नहीं होगा। इसलिए ब्रह्मा का नाम सुनकर भी श्रीभरत का संकोच दूर नहीं हुआ और जब भरत का संकोच दूर नहीं हुआ, तो महर्षि भारद्वाज ने तीसरा प्रयोग

किया। बोले –

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।

भरत, तुम अपने हृदय में रंचमात्र ग्लानि मत करो। सारा दोष तो तुम्हारी माँ कैकेयी का था, पर महर्षि भरद्वाज के इस वाक्य को सुनकर भी भरत का संकोच दूर नहीं हुआ। बल्कि बढ़ गया। क्योंकि भरत की यह धारणा है कि कैकेयी ने जो कुछ किया, वह तो मेरे लिए ही किया, सारे अनर्थ का हेतु तो मैं हूँ। महर्षि भरद्वाज अपनी बात बदलते जा रहे हैं। महर्षि भरद्वाज ने फिर चौथी बात कह दी। बोले –

तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति।

२/२०६/०

तुम्हारी माँ का भी दोष थोड़े ही है। सरस्वती ने ही उसकी बुद्धि को बदल दिया, अब तुम्हारी माँ क्या करे ! श्रीभरत तो बड़े लज्जित हुए। उन्होंने महर्षि भरद्वाजजी की ओर देखा। संकेत यह था कि आप मुझे निर्दोष सिद्ध करने के लिए कहाँ तक चले जाएँगे? सरस्वती तक आप पहुँच गये। पहले तो आपने ब्रह्मा का नाम लिया, अब सरस्वती का नाम ले रहे हैं। आज तक तो किसी शास्त्र-पुराण में यह सुनने को नहीं मिला कि देवी सरस्वती बुद्धि भ्रष्ट कर देती हैं। पहली बार सुन रहे हैं कि सरस्वती ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी। महर्षि भरद्वाज ने सोचा कि अब क्या करें? बस, जैसे रंगमंच पर कई परदे पड़े हुए हैं और एक परदा उठाने के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा आता रहता है। उन परदों के बाद अंतिम परदा कौन-सा होता है? ये अभिनेता जब रंगमंच पर नाटक में भाग लेते हैं, तो कोई राक्षस बना हुआ है, कोई बन्दर बना हुआ है, कोई अच्छा बना हुआ है, कोई बुरा बना हुआ है। आपस में लड़ रहे हैं, एक दूसरे को फटकार रहे हैं। एक की निन्दा हो रही है, दूसरे की प्रशंसा हो रही है। लेकिन अन्तिम परदे के पीछे आप पहुँचे, तो आपको विचित्र दृश्य दिखाई देगा। क्या? अभी आप देख रहे थे कि बन्दर और राक्षस लड़ रहे हैं और उधर चले जाइए अन्तिम पर्दे के पीछे, जहाँ अभिनेता सज रहे हैं। वहाँ आप देखेंगे कि सब बन्दर और राक्षस बड़े आनन्द से एक दूसरे से बातचीत कर रहे हैं, एक दूसरे को सजा रहे हैं, हँसी, ठिठोली कर रहे हैं, गले मिल रहे हैं। बड़े आनन्द में हैं। क्यों? उन बेचारों को नाटक में जिसको जो भूमिका दे दी गई है, वही कर रहे हैं। परदे के पीछे न तो कोई बन्दर है, न कोई राक्षस। तो सारे परदे उठाने के बाद जब भरद्वाजजी ने अन्तिम परदा उठाया, तो दिखाई क्या पड़ा? पहला परदा उठाया, तो दिखाई पड़ी कैकेयीजी। फिर एक परदा उठा, तो दिखाई पड़ी मन्थरा, मन्थरा के पीछे दिखाई पड़ी सरस्वती। लेकिन अन्तिम परदा उठाया, तो क्या दिखाई पड़ा? सरस्वती के पीछे स्वयं भगवान राम ही खड़े हैं। गोस्वामीजी ने कहा –

सारद दारुनारि सम स्वामी।

रामु सूत्रधर अंतरजामी।। १/१०४/५

सरस्वती बेचारी तो कठपुतली है। राम नचाने वाले सूत्रधार हैं। सरस्वती ने जो कुछ किया, वह किसके कहने से किया? आगे चलकर देवताओं ने सरस्वती से कहा कि पहले आपने हमलोगों के कहने से मन्थरा की बुद्धि बदल दी, कैकेयीजी की बुद्धि बदल दी, अब जरा भरत की भी बुद्धि बदल दीजिए, तो काम पूरा हो जाये। तो सरस्वती ने कहा कि तुम्हारे कहने से थोड़े ही मैंने मन्थरा और कैकेयी की बुद्धि बदली थी, तब?

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। २/२१७/३

वे ही मुझसे करा रहे थे। तो दिखाई क्या पड़ा? सबके पीछे जो अन्तिम परदा है, उसको जब अचानक उन्होंने खोल दिया, तो दिखाई पड़ा कि श्रीराम ही इसके पीछे हैं। यह परदा पड़े रहना ही नाटक की दृष्टि से ठीक होता हैं, लेकिन परदे का अन्तिम रहस्य वही है। अरे भरत, यह तो बड़ी भूल हो रही है। क्या? बोले, जो कुछ हुआ, वह श्रीराम ने ही कराया। यदि श्रीराम ने कराया है, तो भले के लिये ही कराया होगा। इसलिए अपराधी की खोज करना ही व्यर्थ है कि कौन दोषी है, कौन अपराधी है। तब? तब उन्होंने कहा कि भरत, वस्तुतः श्रीराम ने ही यह लीला स्वयं अपनी ओर से योजना बनाकर कराई है और उनका उद्देश्य क्या है? वही बात जो अभी मैं आपके सामने कह रहा था, उन्होंने कहा कि मनुष्य के मन के रोगों को मिटाने के लिए, ऐसा किया है। मन में रोग तो बहुत हैं और शास्त्रों में दवाएँ भी बहुत लिखी हुई हैं। लेकिन सारी दवाइयों के द्वारा मन का रोग दूर नहीं होता। कुछ दवाएँ आयुर्वेद में जिसे काष्ठादिक कहते हैं, और जो उत्कृष्ट दवाएँ हैं, उन्हें रसादि की संज्ञाएँ दी जाती हैं। जब साधारण काष्ठादिक दवाओं से रोग दूर न हो, तो अन्त में रस देकर रोग दूर करने की चेष्टा की जाती है। **(क्रमशः)**

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

सबकी श्रीमाँ सारदा

स्वामी चेतनानन्द, अमेरिका

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज वेदान्त सोसाइटी, सेंट लुइस के मिनीस्टर-इन-चार्ज हैं। विवेक ज्योति के पाठकों के लिये उनके अँगेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद भोपाल के लक्ष्मीनारायण इन्दुरियाजी ने किया है।)

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।
(दुर्गासप्तशती, अध्याय ५, श्लोक ७१)

– मातृवत् समस्त प्राणियों में विद्यमान जगदम्बा को प्रणाम, उन्हें बारम्बार प्रणाम। साधारण व्यक्ति माता को एक स्त्री के रूप में देखता है, जो बच्चों को जन्म देती है, उनका पालन-पोषण करती है, गृहस्थी का देखभाल करती है और परिवार को आपस में बाँधकर रखती है। वह पुरुष के समान शारीरिक रूप से बलवान भले न हो, लेकिन वह अधिकांश पुरुषों की तुलना में अधिक धैर्यवान, अधिक दृढ़ और सहिष्णु होती है। उसका स्नेह-प्रेम, नि:स्वार्थ सेवा और देखभाल, करुणा और क्षमा उसे महान बनाते हैं। वास्तव में माँ या पत्नी घर का प्राण है और उसके बिना घर निर्जन स्थान के समान है। हिन्दू धर्मशास्त्र कहते हैं, **गृहिणी गृहम् उच्यते।** ''गृहिणी घर को बनाती है।'' एक दूसरी पुरानी कहावत है : ''पुरुष भवनों का निर्माण करते हैं और नारियाँ घरों का निर्माण करती हैं।''

हिन्दू धर्मशास्त्र कहते हैं, विश्व की सभी नारियाँ जगदम्बा का अंश हैं, लेकिन उन्हें सबकी माता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनकी एक सीमा है। वे दूसरों के बच्चों के लिए वैसा अनुभव या देखरेख नहीं कर सकतीं, जैसा वे अपने स्वयं के बच्चों के लिए करती हैं। लेकिन माँ सारदा सच में सबकी माँ थीं, क्योंकि वे जगदम्बा का अवतार थीं। वे जानती थीं कि वे सभी जीवित प्राणियों में मातृरूप में विद्यमान हैं, नर-नारी, पशु-पक्षी, पेड़ और पौधे उनके विराट शरीर से प्रकट हुए हैं।

दुर्गासप्तशती में एक स्तोत्र है – ''हे माँ आप ईश्वर की अनन्त शक्ति और महामाया हैं, जो ब्रह्माण्ड का मूल उद्गम है। हे देवी ! आपने अपनी दैवी मोहनी शक्ति के द्वारा समग्र संसार को मोहित कर लिया है। जब आप कृपा करती हैं, तो मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती हैं।''[१]

ब्रह्माण्ड की माता

वेदान्त परम्परा में व्यक्ति के आध्यात्मिक अनुभूति को निर्धारित करने के दो मार्ग हैं : स्व-सम्वेद्य, जिसका अर्थ होता है, वे विचार और आध्यात्मिक दर्शन, जिसकी अपने स्वयं के भीतर अनुभूति होती है और जिसका ज्ञान केवल स्वयं को होता है और पर-सम्वेद्य, जिसका अर्थ होता है, व्यक्ति के विचार और अनुभव जो दूसरों को दिखाई देते हैं। माँ सारदा ने स्वयं घोषणा की थी कि वे जगन्माता हैं और उनका जीवन, वाणी, कर्म और लोगों के साथ उनका व्यवहार, अन्य लोगों को आश्वस्त करते हैं कि उनकी घोषणा सत्य थी।

रासबिहारी (बाद में स्वामी अरूपानन्द) पूर्व बंगाल का एक युवक १ फरवरी, १९०७ को माँ सारदा से मिलने जयरामबाटी आया। उसकी सरलता और निश्छलता के कारण माँ का उस पर बहुत स्नेह था और माँ ने उसे अपना एक सेवक बनाया था। माँ से वह भी बहुत स्वतंत्र था। दोनों के बीच की निम्नलिखित वार्ता माँ सारदा के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करती है। वे लिखते हैं –

मैं प्राय: नित्य माँ के कमरे में जाया करता था। माँ बिस्तर में लेटी हुई मुझसे बात करती थीं, राधू उनके बगल में सोई रहती थी। तेल के दिये का मंद प्रकाश कमरे में फैला रहता था। कभी-कभी महिला-सेविका माँ के पैरों में गठिया के लिए औषधियुक्त तेल का मालिश करती थी।

एक दिन बातचीत के दौरान माँ ने मुझसे कहा – ''जब कभी किसी शिष्य का विचार मेरे मन में आता है या उससे मिलने की इच्छा होती है, तो वह शिष्य या तो यहाँ आ जाता है या मुझे उसका पत्र मिलता है। तुम भी किसी विशेष भाव से प्रेरित होकर ही यहाँ आए होगे। सम्भवत: जगदम्बा, जगज्जननी का विचार तुम्हारे मन में रहा होगा।''

क्या आप सबकी माँ हैं?'' मैंने पूछा। माँ ने उत्तर दिया – ''हाँ''

यहाँ तक कि, पशु, पक्षी की भी, जो मनुष्यों से भिन्न हैं?''

''हाँ, उनकी भी।''

''फिर उन्हें इतना कष्ट क्यों झेलना चाहिए?''

''इस जन्म में उन्हें यह अनुभव होना चाहिए।''[२]

वेदान्त के अनुसार ब्रह्म 'सत्-चित्-आनन्द' है। ब्रह्म न पुरुष है, न स्त्री। लेकिन ब्रह्म की वह शक्ति जब रूप धारण करती है, तब वह पुरुष या प्रकृति हो सकती है – नर या नारी। इसके अतिरिक्त सगुण ब्रह्म माता और पिता दोनों हो सकते हैं। एक भक्त ने ठाकुर के आध्यात्मिक कार्यों में माँ सारदा की सक्रिय भूमिका के बारे में यह कहते हुए प्रश्न किया कि अन्य अवतारों की आध्यात्मिक सहचरी ने ऐसा कार्य नहीं किया था। भक्त ने पूछा, वे दूसरों से भिन्न क्यों थीं? माँ ने उत्तर दिया: ''बेटा तुम जानते हो ठाकुर ने सभी जीवों में जगन्माता के दर्शन किए थे। इस समय उन्होंने मुझे जगत के मातृभाव को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ छोड़ा है।''[३]

रक्षक के रूप में माँ सारदा

प्रबोध चन्द्र चट्टोपाध्याय और उनकी पत्नी माँ सारदा के शिष्य थे। वे जयरामबाटी से १२ मील दूर स्थित श्यामबाजार ग्राम में रहते थे। माँ से प्रेरणा प्राप्त करके प्रबोध ने बदनगंज में एक हाई स्कूल प्रारम्भ किया और वे उस स्कूल के प्रथम हेडमास्टर बन गए। राममय (बाद में स्वामी गौरीश्वरानन्द) उनके प्रथम छात्रों में से एक थे। प्रबोध ग्राम एकता मंडल के अध्यक्ष भी थे। लेकिन उनकी लोकप्रियता के कारण उनके कुछ शत्रु भी थे। उनके पुत्र शिवप्रसाद चट्टोपाध्याय लिखते है :

मैंने यह घटना अपने पिता से सुनी थी। एक बार वे जयरामबाटी गए थे। वहाँ एक आदमी आया और एक पत्र दिया, जिसमें यह संदेश था, ''कृपा करके आज सन्ध्या अपने घर लौट जाओ।'' मेरे पिता घर वापस लौटने के लिए तैयार हो गए और माँ को प्रणाम करने के लिए गए। उस समय गाँव के कुछ लोगों से कई कारणों से मेरे पिता की शत्रुता थी। बाद में इस बात का पता चला कि उस संध्या, सुनसान नहरनाली के पास घर के रास्ते में मेरे पिता की हत्या करने का षड्यन्त्र था।

पत्र की बात सुनकर माँ ने मेरे पिता से पूछा, ''क्या तुम पत्र की लिखावट को पहचानते हो, जिसने इसे लिखा है?'' ''हाँ माँ मैं जानता हूँ।'' ''क्या तुम उस व्यक्ति को जानते हो, जो यह पत्र लेकर आया था?'' ''नहीं माँ। मैं उसे नहीं जानता।'' तब माँ ने कहा – ''बेटा रात में घर मत जाओ। कल प्रात: चौकीदार अंबिका और राममय के साथ, दूसरे रास्ते से मारगेरे होते हुए जाओ।'' मेरे पिता ने श्रीमाँ को प्रणाम करके कहा : ''ठीक है माँ, मैं आज रात में नहीं जाऊँगा। आपके निर्देशानुसार मैं कल जाऊँगा।''

दूसरे दिन प्रात: वे मारगेरे होते हुए अंबिका और राममय के साथ घर लौटे। बाद में मेरे पिता ने कहा, 'मैंने माँ की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं किया, चाहे वह जो भी हो।'' मेरे पिता हत्या के षड्यन्त्र के बारे में नहीं जानते थे, लेकिन सर्वज्ञ माँ इसे जानती थीं। बाद में मैंने अपने पिता से सुना कि एक ऐसा जाल बुना गया था कि मैं उसी रात घर लौट जाऊँ। अपने पिता की मृत्यु के बहुत समय बाद मैंने इस घटना की जाँच स्वामी गौरीश्वरानन्द के द्वारा किया, जो वर्ष १९१७ में घटी थी।[४]

अमजद नामक मुसलमान डाकू की कहानी यह दर्शाती थी कि माँ सारदा अपने शरण में आनेवाले की किस प्रकार रक्षा करती थीं। यह एक मुसलमान डाकू की हृदयग्राही कहानी है, जो माँ का भक्त बन गया और उनकी दिव्य लीला में एक अद्‌भुत भूमिका का निर्वाह किया।

मनुष्य मित्र या शत्रु लेकर जन्म नहीं लेते। वे अपने कर्मों के द्वारा और अपने शब्दों से अपने मित्रों और शत्रुओं का निर्माण करते हैं। एक कहावत है : ''छोटी विचार का व्यक्ति सम्बन्धी और अपरिचित में भेद करता है, लेकिन महान लोग सबको अपना अन्तरंग मानते हैं। एक अवतार या महापुरुष की जीवनी या उपदेश पर किसी जाति या देश या जिस धर्म से वे सम्बन्ध रखते हैं, उसका विशेषाधिकार नहीं होता, उनका सम्बन्ध पूरी मानवता से होता है। उनका विश्वव्यापी दृष्टिकोण समस्त मानव-जाति और धर्मों के बीच की सीमाओं को समाप्त कर देता है। माँ सारदा ने अपने मातृवत् प्रेम एवं स्नेह के द्वारा, मुसलमान और ईसाई को अपना बना लिया था।

अमजद की कहानी

सिरोमनीपुर मुख्य रूप से मुस्लिम बहुल ग्राम है, जो जयरामबाटी से तीन मील की दूरी पर स्थित है। अंग्रेजों ने यहाँ के निवासियों को उनके जीवन यापन के लिए रेशम

के कीड़ों का पालन करने के लिए बाध्य किया। लेकिन स्थानीय रेशम उद्योग आयातित रेशम उद्योग से स्पर्धा नहीं कर सका, इसलिये गाँववालों की रोजी-रोटी चली गई। रेशम पैदा करने की खेती के कारण धान तथा अन्य फसलें उगाना इन लोगों ने बन्द कर दिया, इसलिये इनके पास अन्न नहीं था। जीवित रहने के लिए बाध्य होकर इन्हें लुटेरा बनना पड़ा। आसपास के गाँववाले भयभीत थे और उन पर दृष्टि रखते थे। लोग उन लोगों को काम नहीं देते थे, डरते थे कि कहीं रात में चोरी करने न आ जायें।

जैसा कि कहा जाता है, बुरे दिन अकेले नहीं आते। वर्ष १९१५-१६ में बाकुड़ा जिले में सूखा और अकाल था। गरीबों के पास खाने को नहीं था, इसलिए वे लोग मरने-मारने पर उतारू हो गए। इस समय अमजद नामक एक

ग्रामीण डकैती के अपराध में जेल भेजा गया। अमजद की माँ फातेमा और उसकी बीबी मतीजन माँ सारदा के पास मदद माँगने आए। माँ ने उन्हें मुरमुरा और गुड़ खिलाया, चावल, तेल, कपड़ा और एक रुपया दिया। जब उनकी सहायता की बात फैली, दूसरे मुसलमान परिवार भी माँ के पास आए और माँ ने उनकी भी सहायता की। फलत: रामकृष्ण मिशन ने कोआलपाड़ा में निराश्रितों के लिए एक राहत-केन्द्र प्रारम्भ किया। शिहर, जिबटा, फुलुली और श्यामबाजार के धनी और मध्यम वर्ग के लोग मूक द्रष्टा बने रहे।

पिछले कई वर्षों से माँ अपनी पुरानी झोपड़ी में रहती थीं और अपने दो भाइयों की झोपड़ियों का उपयोग अपने शिष्यों और बाहर से आनेवाले अतिथियों के लिए करती थीं। जिस प्रकार शिष्यों की संख्या बढ़ रही थी, स्वामी सारदानन्द ने अनुभव किया कि माँ को उनके स्वयं के लिए मकान की आवश्यकता है। अप्रैल, १९१५ में उनके नए मकान का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ और उसका औपचारिक रूप से उपयोग १५ मई, १९१६ से प्रारम्भ हुआ। माँ के शिष्य विभूति घोष ने अमजद और कुछ मुसलमान मजदूरों से मकान का निर्माण करवाया, जिसका छप्पर फूंस का, दीवाल और फर्श मिट्टी के थे। निर्माण कार्य स्वामी अरूपानन्द की देखरेख में हुआ। सजाप्राप्त चोरों को काम देने पर कुछ संकीर्ण विचारवाले भयभीत गाँववालों ने माँ सारदा को हतोत्साहित करने का प्रयास किया, लेकिन माँ ने उनकी बात अनसुनी कर दी। मुसलमान मजदूरों के प्रति माँ का व्यवहार स्नेहमय था और माँ उनसे कोमल और मधुर वाणी में बात करती थीं। मुसलमान मजदूर जिनमें से अधिकांश डकैत थे, उन्हें 'माँ' कहकर पुकारते थे। उनके सद्व्यवहार को देखकर गाँववाले बाद में कहते थे कि ''माँ की कृपा से ये डकैत भी भगवान के भक्त हो गए।''[६]

एक दिन दोपहर में माँ ने अमजद को भोजन के लिए बुलाया और अपने घर के बरामदे में उसे भोजन के लिए बिठाया। जातीय भेदभाव के कारण नलिनी माँ की भतीजी, अमजद के पत्तल में दूर से फेंककर भोजन परोस रही थीं। माँ सारदा इसे देखकर बोली : ''कोई भोजन का आनन्द कैसे ले सकेगा, यदि उसे इस प्रकार घृणा के साथ परोसा जाये? मुझे उसको प्रेम से भोजन कराने दो।'' अमजद के भोजन समाप्त करने के बाद, माँ सारदा ने अपने हाथों से जूठी भोजन की पत्तल को उठाकर भोजन के स्थान को साफ किया। नलिनी चीख पड़ी : ''बुआ, तुम्हारी तो जात चली गई !''

माँ ने उसको डाँटते हुए कहा ''चुप रहो''। ''जैसे शरत् मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद मेरा बेटा है।'' शरत् (स्वामी सारदानन्द) श्रीरामकृष्ण के शिष्य, रामकृष्ण मिशन के सचिव और सन्त के गुणों से सम्पन्न एक संन्यासी : अमजद एक मुसलमान और सजाप्राप्त डाकू था। इस प्रकार माँ सारदा ने स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिया, वे अच्छे और बुरे दोनों की ही माँ हैं। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि जीवन्त सद्व्यवहार एक कमजोर दलित व्यक्ति के हृदय में विश्वास प्रज्वलित कर सकता है कि वह जगदम्बा का पुत्र है। उनके उदाहरण से श्रीकृष्ण के शब्द जीवन्त हो गए। ''सभी प्राणियों के प्रति मेरा व्यवहार समान है – मेरे लिए कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है। लेकिन जो भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमे हूँ।''[७]

लगभग दो वर्ष पश्चात् माँ सारदा जयरामबाटी में थीं,

और मलेरिया बुखार के कारण शय्याग्रस्त हो गई थी। कई स्थानों से भक्त उन्हें देखने आए। उनकी सेवा कर रहे एक ब्रह्मचारी ने एक दिन प्रात: देखा कि एक व्यक्ति जिसका रंग काला था, फटे हुए कपड़े पहने हुए, छड़ी के सहारे झुककर चलता हुआ घर में प्रवेश किया। जैसे ही वह माँ के कमरे के पास पहुँचा, उन्होंने उसे देख लिया। ''वहाँ कौन है?'' माँ धीमी आवाज में बोलीं। ''क्या यह मेरा बच्चा अमजद है? भीतर आ जाओ।'' अमजद बरामदे में चढ़कर माँ के कमरे के चौखट के पास बैठ गया और अपने कष्टों से भरे जीवन के बारे में माँ से बातें करने लगा।

यह देखकर कि माँ उससे सहज ढंग से बात कर रही हैं, ब्रह्मचारी कमरे से बाहर चला गया। बाद में वह माँ के कमरे में रखे हुए गंगाजल को लेने के लिए वापस लौटकर आया। माँ जब स्वस्थ रहतीं, तब प्राय: वे गंगा-जल रसोई में छिड़ककर ठाकुर को भोग लगाती थीं। उस दिन ब्रह्मचारी को भोग लगाना था। अब वह दुविधा में था : वह अमजद को जाने को नहीं बोल सकता था, माँ को अच्छा नहीं लगता, लेकिन उसका जातीय पूर्वाग्रह उसकी अन्तरात्मा को कचोट रहा था : उसको गंगाजल का कलश उठाने के लिए मुसलमान के पास से गुजरना पड़ेगा। जैसा भी हो, उसने अपने कर्तव्य को पूरा करने का निर्णय लिया, यह सोचकर कि यदि कुछ गलती होगी, तो माँ रोक देगीं। ठाकुर को भोग लगाने के बाद वापस आकर उसने गंगाजल माँ के कमरे में रख दिया। माँ ने सब कुछ देखा, पर चुप रहीं।

माँ सारदा के कहने पर अमजद को शरीर में लगाने के लिए तेल दिया गया, उसे तालाब में नहाने की अनुमति दी गई, नए वस्त्र दिए गए, उसे भरपेट अच्छा भोजन दिया गया। उस दिन दोपहर बाद पान का बीड़ा चबाते हुए घर लौट रहा अमजद, बिलकुल अलग आदमी दिख रहा था। वह अपनी गठरी में एक आयुर्वेदिक तेल की बोतल के समेत कई उपहार माँ के पास से ले गया। बाद में माँ ने ब्रह्मचारी को बताया : ''अमजद को नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि उसने कोई तेज दवा ले ली थी, जिससे उसका दिमाग गरम हो गया था। नारायण तेल की एक शीशी बहुत दिनों से रखी थी और मैंने उसे दे दिया। उसका दिमाग ठंडा हो जायेगा, यदि वह उसका उपयोग करेगा। वह तेल बहुत लाभकारी है।''

अमजद शीघ्र स्वस्थ हो गया। जब भी उसे सूचना दी जाती, माँ के घर कुछ काम है, वह शीघ्र आकर निष्ठापूर्वक काम पूरा कर जाता था। लम्बी अस्वस्थता के कारण एक बार माँ की भूख चली गई, डाक्टरों ने उन्हें अनानास खाने का परामर्श दिया। उस मौसम में वह फल जयरामबाटी में नहीं मिलता था। तो भी यह बात अमजद को बताई गई, वह कई गाँवों में ढूँढ़ता रहा, जब तक उसे माँ के लिए फल नहीं मिल गए।

माँ का स्नेह प्राप्त करने के बाद भी अजमद ने अपना अपराधी जीवन नहीं छोड़ा। जयरामबाटी के लोग उससे भयभीत रहते थे, लेकिन माँ के प्रति उसकी भक्ति होने के कारण उनका गाँव डकैती से मुक्त था। एक बार जेल से छूटने के बाद, अमजद घर आया, उसने घर के बेल में कुछ कद्दू लगे हुए देखा। वह कुछ कद्दू लेकर सीधे माँ के पास जयरामबाटी गया। माँ सारदा बोलीं – ''मैं तुम्हारे बारे में बहुत समय से सोच रही थी। इन दिनों तुम कहाँ थे?'' उसने बिना झिझक उत्तर दिया कि वह गाय चोरी करने के अपराध में जेल गया था। माँ उसके अपराध की ओर बिना ध्यान दिए अत्यन्त कृपापूर्वक बोलीं, ''लम्बे समय तक तुम्हारी अनुपस्थिति से मैं चिन्तित थी।''[९]

अमजद चोरों के एक गिरोह का सरदार था। विभूति घोष ने एक कहानी बताई, जो माँ सारदा ने हँसकर उसे बताया था। ओ विभूति ! क्या तुमने अमजद की बुद्धि और चालाकी के बारे में सुना है? शिहड़ के तेली परिवार की एक व्यभिचारिणी स्त्री का एक प्रेमी था। उसने अपने पति की हत्या करने के लिए अमजद को पैसा देने का प्रस्ताव रखा। स्त्री ने अमजद को रात में धीरे से दरवाजा खटखटाने को कहा और वह दरवाजा खोल देगी। वह उसके पति की हत्या करेगा और तत्काल वहाँ से चला जायगा। योजना के अनुसार अमजद ने रात को दरवाजा खटखटाया और स्त्री ने दरवाजा खोला। लेकिन उसके पति की हत्या करने की जगह अमजद उसके कान की बालियाँ झपट कर भाग गया।'[१०] फलस्वरूप अमजद को जेल जाना पड़ा।

स्वामी ईशानानन्द ने लिखा है – ''माँ अपनी अन्तिम अस्वस्थता के समय जब कलकत्ते में थीं, जयरामबाटी से एक पत्र आया, उसमें लिखा था कि पास के गाँव चाँदीपुर में अमजद ने डकैती डाली और इस दौरान वह बुरी तरह घायल हो गया। कुछ दिन छिपने के बाद वह पकड़ लिया गया। यह खबर सुनने के बाद माँ बोली : हे भगवान ! बरदा, मैं जानती थी, उसकी डकैती डालने की प्रवृत्ति सुप्त

थी। तुम क्या सोचते हो, मैं बिना कारण उसकी चिन्ता करती थी? उसको भोजन कराकर, उपहार देकर, मैं उसे अपने नियन्त्रण में रखती थी। वह सदा सेवक की भाँति विनम्रता से सिर झुकाकर मेरी आज्ञा का पालन करता था। मैं अपनी सभी भतीजियों के साथ, जिनके पास बहुत जेवर थे, वहाँ रहती थी। तुम लोग सदा मेरे आसपास नहीं रहते थे और इसके अतिरिक्त तुम लोग बहुत छोटे थे।''[११]

यह कहा जाता है कि माँ सारदा के लीला-संवरण के बाद डकैती के दौरान अमजद को तलवार के प्रहार से घाव हो गया। घाव विषाक्त हो गया और अन्त में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार उसने अपने कर्म का फल भोग लिया। यह ज्ञात नहीं है कि माँ के चले जाने के बाद अमजद के मन में क्या था। उसने निश्चित ही इतना प्रेम, दया और क्षमा करनेवाली माँ की कमी की पीड़ा का अनुभव किया होगा। माँ ने अमजद के द्वारा यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार स्नेह की शक्ति के द्वारा बुराई की शक्ति को समाप्त किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप मुसलमान डाकुओं ने माँ के परिवार पर कभी वार नहीं किया। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ८ का शेष भाग

अब आपका जप किस नाम से करूँगी?'' तब श्रीमाँ ने कहा – 'राधा' नाम से कर सकती हो या और किसी नाम से, जैसा तुम्हें सुविधा हो, वैसे ही करना, यदि कुछ न कर सको, तो केवल 'माँ' कहकर जप करने से ही होगा।'[६]

जयरामबाटी में १९१९ में एक त्यागी भक्त ने दुखित होकर श्रीमाँ से कहा – माँ, इतना देख-सुनकर भी मैं तुम्हें अपनी माँ के रूप में नहीं जान सका। इस पर माँ ने आश्वासन दिया – ''बेटा अपनी माँ न होने पर इतना आओगे क्यों? जो जिसका है, वह उसी का रहता है। युग-युग में अवतार होते हैं, मैं तुम्हारी अपनी माँ हूँ, समय पर पहचानोगे।''[७]

जब माँ श्रीरामकृष्ण देव से मिलने के लिये अपने पिताजी के साथ दक्षिणेश्वर जा रही थीं, तब रास्ते में बीमार पड़ गयीं। रात में वे एक चट्टी पर रुकीं। शरीर ज्वर से तप रहा था। तभी उन्होंने स्वप्न देखा कि एक महिला उनके पास बैठी है। उन्होंने पूछा, तुम कौन हो और कहाँ रहती हो? उस महिला ने कहा, मैं तुम्हारी बहन हूँ और दक्षिणेश्वर में रहती हूँ। तुम शीघ्र हो स्वस्थ हो जाओगी और अपने पति का दर्शन प्राप्त करोगी। इस प्रकार दक्षिणेश्वरी माँ काली की बहन हैं माँ सारदा।

एक बार श्रीरामकृष्ण देव ने अपने भानजे हृदयराम चट्टोपाध्याय को चेतावनी दी थी – ''अरे हृदय, तुम मेरी उपेक्षा कर देते हो, किन्तु उनकी (श्रीमाँ की) कभी उपेक्षा मत करना। क्योंकि मेरे भीतर जो है, उसकी फुफकार से तुम बच सकते हो, किन्तु उनके (श्रीमाँ के) भीतर जो है, उसकी फुफकार से ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेंगे।'' इससे श्रीमाँ के दिव्य स्वरूप का परिचय मिलता है।

होनहार वीरवान के होत चीकने पात – दैवी शक्तियों का आगमन असाधारण और विलक्षण होता है। श्रीमाँ के जन्म के पूर्व उनकी माता श्यामासुन्दरी देवी के साथ एक घटना घटी। जब वे शीहड़ में अपने मायके में थीं, तब वे प्रसाधन हेतु तालाब के किनारे आँवले के पेड़ के पास बैठ गयीं। अचानक उन्हें पायल की झनझनाहट सुनाई पड़ी। वृक्ष की शाखा से एक सुन्दर छोटी बालिका ने अपने सुन्दर कोमल हाथों से श्यामासुन्दरी का गला पकड़ लिया। तब वे मूर्च्छित हो गयीं। उसके बाद उन्हें बोध हुआ कि वही नन्हीं बालिका उनके गर्भ में प्रविष्ट हो गयी।

बचपन में तालाब में स्नान करते समय माँ की अष्टसखियाँ उनके साथ स्नान करने जातीं और उनका मनोरंजन करतीं।

श्रीमाँ ने एक बार स्वयं कहा था, देखो बेटा, बचपन में मैं देखती थी कि मेरे ही समान एक लड़की मेरे साथ-साथ रहती हुई मेरे सभी कार्यों में सहायता करती है, मेरे साथ हँसी-विनोद करती है, पर दूसरे के आने पर उसे कोई देख नहीं पाता। दस-ग्यारह वर्ष तक ऐसा ही होता रहा। जब वे चारा काटने के सरोवर में प्रवेश करतीं, तो देखतीं कि एक उन्हीं की समवयस्क बालिका घास काटने में उनकी सहायता कर रही है।

अन्त में क्षीरोदबाला के चाचा के शब्दों में, 'जिस काली की ठाकुर ने स्वयं पूजा की थी, उस काली के चरणों का हमलोगों ने दर्शन किया है, स्पर्श किया है, अतः अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।' ऐसी दिव्यरूपिणी हमारी माँ सारदा थीं। माँ, तेरे चरणों में अहर्निश अनन्त प्रणाम ! ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीमाँ सारदा देवी, पृ १७३ **२.** वही पृ. ६३ **३.** वही पृ. ६५ **४.** वही पृ. ३२६ **५.** वही पृ. ३२७ **६.** वहीं पृ. ३२९ **७.** वही पृ. ३२९

आत्मशक्ति का बोध

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, हम सभी जानते हैं कि स्वामीजी के जन्म दिवस १२ जनवरी को **'युवा दिवस'** के रूप में मनाया जाता है। इसीलिए हम बार-बार 'आत्मशक्ति का बोध' इस विषय के बारे में बातें किया करते हैं। ताकि जब कभी भी हमारे सामने कोई बड़ी मुसीबत आ जाये, तो उस डर का सामना हम पूरे दृढ़ता के साथ कर सकें।

एक फुटबॉलर की तरह आप तब तक जीवन में आगे नहीं बढ़ सकते, जब तक आपको मालूम न हो कि आप का गोलपोस्ट कहाँ है? आओ, इससे सम्बन्धित एक सच्ची कहानी हम देखते हैं। एक ऐसे लड़के की कहानी जिसके परिवार में पैसे की कमी थी, पिता मजदूरी करते थे और माँ सेविका थी। जिसे डॉक्टर ने फुटबाल खेलने से मना किया था और कहा था कि अब तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता। तुम फुटबॉल खेलने के बारे में सोचना भी मत। लेकिन आज वही लड़का विश्व का सबसे महान फुटबॉलर कहलाता है।

बच्चो, आप जानते हो वह लड़का कौन है? इसका नाम लियोलेन मेस्सी है। मेस्सी की दादी ने उसे प्रेरित किया कि तुम फुटबॉलर बनो। मेस्सी ४ साल की उम्र में ट्रेनिंग क्लब में सम्मिलित हुआ और ८ साल की उम्र में सबसे श्रेष्ठ फुटबॉलर क्लब लोसारियो की तरफ से खेलने लगा। वह दिन-रात परिश्रम करता था। १० साल की उम्र में दादी की मृत्यु के बाद मेस्सी परेशान रहने लगा और उसने फुटबॉल खेलना बंद कर दिया। लेकिन मेस्सी के पिताजी ने उसे समझाया कि तुम अपने दादी के सपने को पूरा करो। तुम्हारी दादी चाहती थी कि तुम दुनिया के सर्वश्रेष्ठ फुटबॉलर बनो।

परेशानियाँ मेस्सी को छोड़ने का नाम ही नहीं ले रही थीं। उसके जीवन में दूसरी परेशानी हॉर्मोन ग्रोथ डेफीसियन्सी के रूम में आई। इस बीमारी के कारण उसका शारीरिक विकास रूक गया। इस बीमारी का इलाज का व्यय लगभग १५ सौ डॉलर (लगभग १.२५ लाख रु.) प्रति महीने था। कोई भी क्लब इतना अधिक व्यय नहीं उठाना चाहता था। इससे उसका मनोबल टूट गया कि कोई मेरा साथ नहीं दे रहा है।

लेकिन विपरीत परिस्थितियों के बीच में मेस्सी ने फुटबॉल खेलना नहीं छोड़ा। इन्हीं सब कठिन परिस्थितियों के बीच स्पेन के बार्सिलोना क्लब के डायरेक्टर ने मेस्सी के

पिता से कहा कि पहले आपलोगों को अर्जेन्टिना छोड़कर यहाँ आना होगा और एक कॉन्ट्रेक्ट हस्ताक्षर करना होगा। किन्हीं कारणों से कॉन्ट्रेक्ट पर हस्ताक्षर नहीं हो रहा था। फिर मेस्सी के पिता ने कहा – यदि आप सहायता कर सकते हो, तो बताओ, नहीं तो हम कहीं और चले जाएँगे।

वह डायरेक्टर जो टीम के कोच भी थे, मेस्सी को मैदान में खेल दिखाने को कहा। मेस्सी का खेल देखकर पास रखे टिश्यू पेपर पर ही उन्होंने बॉण्ड लिखकर उस पर हस्ताक्षर करके मेस्सी को खेलने के लिये हाँ कर दिया। मेस्सी की बीमारी का पूरा व्यय क्लब ने उठाया और उसे पहली बार बार्सिलोना क्लब से खेलने का मौका मिला।

मेस्सी की एक और समस्या यह थी कि उसकी ऊँचाई कम थी। टीम के अन्य खिलाड़ी यह कहते थे कि यह क्या खेलेगा? इसकी तो लम्बाई ही कम है। इन बातों को नजर अंदाज करते हुए मेस्सी केवल अपने खेल पर ध्यान देने लगा। धीरे-धीरे उसकी बीमारी ठीक होने लगी। उसे १ दिन में एक पैर में २१ इंजेक्शन और दूसरे दिन दूसरे पाँव में २१ इंजेक्शन लेना होता था।

२००३ में मात्र १६ वर्ष की उम्र में मेस्सी ने बार्सिलोना क्लब के लिये अद्भुत मैच खेला तथा उसने २००५ में पहली बार अर्जेन्टिना के लिए अपना पहला मैच खेलते हुए ४-४ डिफेन्डर्स को पार करके गोल किया। उसके उस विस्मयकारी मैच को देखकर अर्जेन्टिना के पूर्व महान फुटबॉलर डियागो माराडोना कहते हैं कि यह लड़का जब मैच खेलता है, तो इसे देखकर मुझे ऐसा लगता है जैसे एक दिन यह खिलाड़ी अपने देश का नाम विश्व में ऊँचा करेगा, एक महान फुटबॉलर बनेगा।

बच्चो, यह आत्मबल ही था कि कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी महान फुटबॉलर लियोलेन मेस्सी ने अपने सपने को नहीं छोड़ा। विपक्षी दल के खिलाड़ी खेलते समय उसके आत्मबल को कम करने के लिए उसको कई बार जख्मी कर दिया करते थे, परन्तु मेस्सी इन सब बातों की ओर ध्यान न देते हुए अपने खेल की ओर पूरी तरह से समर्पित रहता था। तो बच्चो, अपने अन्दर आत्मबल, आत्मशक्ति को विकसित करो। ○○○

काव्य-लहरी

श्रीमाँ सारदा-वन्दना

श्रीरामकुमार गौड़, वाराणसी

हे मातु सारदा, शुभदा-वरदा, एक यही उपकार करो ।
प्रभु चरणों में निर्भरा-भक्ति हो, यह विनती स्वीकार करो ।।
तुम प्रभु-लीला-सहचरी, सरस्वती, प्रभु-शक्ति, अवतारी हो।
तुम त्याग-तितिक्षा-तप रूपा माँ, सर्वसहा, अविकारी हो।।
अब भक्ति-विवेक दान करके माँ! मुझको शुद्धाचार करो।।१
तुम जगजननी, कलिमलहरनी, अघ-कलुष मिटाने आई हो ।
प्रभु-भाव उदार प्रसार हेतु निज स्नेह लुटाने आई हो ।।
निज कृपा दृष्टि से मम अन्तर में दिव्य-प्रेम-संचार करो ।।२
तुम ज्ञानदायिनी, भक्तिदायिनी दिव्यानन्द-स्वरूपा हो ।
दुख-दुर्गुण-दूषण-अपहारी हो, निर्मल प्रेम स्वरूपा हो ।।
अब ज्ञान-भक्ति की निर्मल धारा अन्तर में साकार करो ।।३
प्रभु कार्य हेतु जग में आकर, रहती मानो संसारी हो ।
निज असली रूप छिपाकर माँ, तुम लज्जाशीला नारी हो ।।
मन-वचन-कर्म से विमल बनाकर, भव-सागर से पार करो।।४
तुम विमल दृष्टि के साथ भक्ति की शिक्षा देने आई हो ।
पर-दोषदृष्टि को छोड़ शान्ति मिले, यही सिखाने आई हो ।।
मैं सबके गुण ही देख सकूँ, ऐसा ही भाव-विचार करो ।।५
तुम मेरी अपनी माता हो, यह तुम ही कहती आई हो ।
फिर भी सन्तान पुकारे, पर तुम पास न अब तक आई हो ।।
अब सत्वर आकर गोद उठाकर मेरा तनिक दुलार करो ।।६
तुम एक समान शरत-अमजद को पुत्र मानती आई हो ।
दोनों ही तेरे पुत्र एक से, यही बताती आई हो ।।
अब उठकर, सिर पर हाथ फेरकर, मुझको भी स्वीकार करो।।७
तुमने नरेन्द्र को आशिष देकर उनको ऐसा ज्ञान दिया ।
वे बने विवेकानन्द, उन्होंने प्रभु का कार्य महान किया ।।
निजकृपा दृष्टि के एक बिन्दु से निर्मल मम आधार करो ।।८
तुम ठाकुर की दैवी लीला में माँ-सहचरी-स्वरूपा हो ।
तुम रामकृष्णगतप्राणा हे माँ, भाव-स्वभाव अनूपा हो ।।
यह विनती, अब प्रभु-भक्ति दिलवाकर मम उद्धार करो ।।९
निज अयोग्यता-दोष आदि से मैं घबराया-हारा हूँ ।
हे माँ ! बस इतना जानो मैं भव-विपदा का मारा हूँ ।।
आज पुत्र को विकल देखकर, कुछ उपाय इस बार करो।।१०
हे माँ ! एक यही विनती तुम इस मन पर अधिकार करो ।
मंगल-पथ पर सदा चलाकर निर्मल भाव-विचार करो ।।
प्रभु देव, नरेन्द्र सहित कृपया मम हृदय-प्रदेश विहार करो।।११

रूप छिपाकर तुम माँ आयी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

रूप छिपाकर तुम माँ आयी, करने इस जग का उद्धार।
पापी तापी सभी जनों को, देने अपना दैवी प्यार ।।
रूप तुम्हारा अनुपम है माँ, निकले उससे पूत बयार ।
दुख क्लेश दारिद्र्य मिटाने, यह तेरा अद्‌भुत उपचार।।
अवगुंठन में माँ तुम रहती, तुम पवित्रता की आधार ।
मलिन हृदय ले जाऊँ कैसे, इसी भाव का मन में भार।।
तुम हो अगम अगोचर माता, भक्तों के हित हो साकार।
पुत्र तुम्हारा विनय करत है, कर दो माँ भवसागर पार।।

युवकों ने ही क्रान्ति मचाई

– विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

बहुत जरुरत भारत माँ को, ऐसे वीर जवानों की ।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की ।।
व्यसन मुक्त हो देश हमारा रोग-शोक से दूर रहें,
पवन सुगन्धित बहे चतुर्दिक नदियाँ शुचितापूर्ण बहें,
युवा हमें श्रमशील चाहिये, गति मोड़ें तूफानों की ।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की ।।
सज्जन शालीन युवा भारत के, द्रुत गति से बढ़ते जायें,
जब तक मिले न लक्ष्य सुनिश्चित, तब तक श्रम करते जायें,
नए सृजन हित बहुत जरुरी, साधक प्रतिभावानों की ।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की ।।
जिसमें हो बल-वीर्य-पराक्रम, अनुशासित मर्यादित हों,
अगुवाई को आगे आएँ, नियमों से संचालित हों,
सृजनशील अभियान चलायें, ऐसे निष्ठावानों की ।
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की ।।
युवकों ने ही क्रान्ति मचाई, युवकों ने निर्माण किया,
लोकहित अनाचार दूर कर, युवकों ने बलिदान दिया,
प्रतिभा सहित जरूरत युग को, चरित्रनिष्ठ धनवानों की,
जिम्मेदारी निभा सकें जो, प्रगतिशील अभियानों की ।।

(अखण्ड ज्योति, अगस्त-२०२३ से साभार)

इष्ट को मूर्ति नहीं, जाग्रत समझो

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

धैर्य भगवत्प्राप्ति के लिए साधक में एक आवश्यक गुण है। हमारे मन की चंचलता जड़ है। धीरज रखकर लगातार लगे रहना है। मन की पवित्रता रखनी है। दूसरे की नकल कभी नहीं करना है। आध्यात्मिक जीवन में मन की पवित्रता का अधिक महत्त्व है। हमारे मन में क्या-क्या विचार आ रहे हैं, इसे गम्भीरता से देखना चाहिए। बिना किसी आधार का भाव नहीं होता। भाव का तात्पर्य है, हमारे मन में जो अच्छे विचार आते हैं – जैसे हम भक्ति-मार्ग से जाते हैं, तो हमारे मन में ईश्वरीय भाव आता है। आध्यात्मिक जीवन में भाव का महत्त्व है। भगवान हमारा भाव देखते हैं। भगवान तो 'भावग्राही जनार्दन' हैं। यदि हमारे जीवन में किसी के प्रति ईर्ष्या आयेगी, तो हम नष्ट हो जायेंगे। यदि हमारे मन में ईश्वरीय भाव आयेगा, तो हमारा जीवन आनन्दमय होगा।

जीवन के दिन पूरे हो जाने के बाद बुरे कर्म ही तुमसे बदला लेंगे। तब गुरु और ईश्वर के सिवा कोई तुम्हें बचानेवाला नहीं है। यदि दूसरों से हम द्वेष करेंगे, तो हम नरक में जायेंगे। बल्कि उसका कुछ नहीं होगा। हमें ईश्वर ने सब प्रकार की सम्पन्नता दी है, तो अधिक से अधिक समय हमें भगवान के लिए निकालना है। भगवान को पुकारना है। जो कर्म हमें मिला है, उसे भगवत्प्रीत्यर्थ करने से हमारे कर्म अच्छे हो जाते हैं और हम भगवान की कृपा के अधिकारी हो जाते हैं। संसार में हमें जो भी परिस्थितियाँ मिली हैं, वे हमारे कर्मों का ही फल हैं। अपने-अपने कर्मों के अनुसार सबकी रुचि अलग अलग होती है। वेदान्त कहता है, हम ही अपने भाग्य के विधाता हैं। कर्म अच्छे करोगे, तो अच्छा फल मिलेगा, बुरे कर्म करोगे, तो बुरा फल मिलेगा। अपने कर्मों के द्वारा ही मुक्ति होगी और अपने ही कर्मों के द्वारा बंधन होगा। हमें संसार में कु-इच्छा नहीं करनी है और नि:स्पृह होकर रहना है। प्रभुप्रीत्यर्थ कर्म करने से मुक्ति मिलती है। जहाँ स्वार्थ आता है, वहीं बन्धन में पड़ जाते हैं।

हमें भगवान से सम्बन्ध स्थापित करना है। जैसा मातृभाव, सखाभाव। हम कई प्रकार से भगवान की सेवा कर सकते हैं। लेकिन भाव न रहने से हम सफल नहीं होते। हमारे शास्त्रों में मातृभाव में पूजा करने को कहा गया है। क्योंकि मनुष्य के जीवन में सबसे पहले माँ से ही सम्बन्ध होता है। कहा गया है – **या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।** कल्पना का आश्रय लेने से धीरे-धीरे कल्पना सत्य हो जाती है। अपने इष्ट को मूर्ति नहीं समझना चाहिये। उन्हें जीवन्त, जाग्रत ज्योतिर्मय रूप में देखना चाहिए। ईश्वर के प्रति अपनत्व होना चाहिये। उनसे अपनत्व का सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। हमारी पूजा और प्रार्थना मशीन जैसी नहीं होनी, अपितु भावपूर्ण होनी चाहिए।

हमको ईश्वर से ईश्वर को ही माँगना चाहिए। सारी सुविधायें मिलने के बाद अधिकांश लोग दुखी हैं। हमें सोचना चाहिए कि हम रामकृष्ण भावधारा से क्यों जुड़े हैं? स्वार्थ के लिए जुड़े हैं तो शान्ति नहीं मिलेगी। यदि भगवान के लिए ही जुड़े हैं, तो भक्ति मिलेगी। अपने मन की अशान्ति को दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान मेरा भी कल्याण हो और सबका कल्याण हो। दूसरों के लिए प्रार्थना करने से अपना ही कल्याण होता है। प्रार्थना से, जप करने से हमारे मन में स्थिरता और शान्ति आती है। प्रार्थना में बहुत शक्ति है।

उसके बाद मन में शान्ति प्राप्त करने के लिये हमें सामर्थ्य के अनुसार दूसरों की भगवद्भाव से सेवा करनी चाहिये। लेकिन प्रतिदान की आशा नहीं रखनी चाहिये। परनिन्दा और परचर्चा से बचना चाहिए, द्वेष से बचना चाहिए। जो हमको मिला है, उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये, नहीं तो मन को कष्ट होगा। सबके तनाव का एक ही कारण है कि हम यह नहीं सोचते हैं कि हम क्या चाहते हैं? हम संसार को चाहते हैं या भगवान को। संसार से अशान्ति होगी। शान्ति तो भगवान के चरणों में शरणागति में ही है। ○○○

जिस प्रकार मिट्टी का शरीफा या हाथी देखने पर सचमुच के शरीफा या हाथी की याद आती है, उसी प्रकार ईश्वर की प्रतिमा देखने पर ईश्वर का ही स्मरण होता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

क्या तुम्हारी कोई प्रतिमा है?

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वामी विवेकानन्द ने तेजोदीप्त भाषण द्वारा युवाशक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा, हमारे बलवान्, बुद्धिमान, पवित्र एवं निःस्वार्थ युवाओं द्वारा ही भारत एवं समस्त संसार का पुनरुत्थान होगा। उन्होंने गम्भीर स्वर से युवाओं के प्रति कहा : 'उठो, जागो, शुभ घड़ी आ गयी है', 'उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि तुम्हारा बलिदान चाहती है', 'उठो, जागो – सारा संसार तुम्हें आह्वान कर रहा है !' इन स्फूर्तिदायी विचारों से युवाओं के हृदय में नवीन शक्ति और प्रेरणा का संचार होता है।

युवा असाधारण बल और असीम ऊर्जा के स्रोत हैं। परन्तु हमारे युवा अपनी असीमित क्षमताओं से अनभिज्ञ हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि वीर हनुमान भी अपनी असीम शक्तियों से अनभिज्ञ थे, उन्हें ज्ञात ही नहीं था कि वे विशालकाय समुद्र को लाँघ लेंगे। लेकिन जब जामवंतजी ने उन्हें उनकी असीम शक्तियों से परिचित कराया, तो वे एक ही छलांग में विशालकाय समुद्र को लाँघ गये ! अत: युवाओं को उनके बल और क्षमताओं से परिचित कराना होगा। युवाओं के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास करने हेतु उनके भीतर छिपे कौशल को अभिव्यक्त करने की अत्यधिक आवश्यकता है। युवा यदि कुछ करने की ठान लें, तो वे कार्य करने की अद्भुत क्षमताएँ प्राप्त कर सकते हैं।

किसी राजा का एक बेटा था। हालाँकि वह किशोरावस्था में बहुत छोटा और दुबला-पतला कंकाल के समान दिखता था। उसके घूमते पैर, धँसी हुई छाती, दुर्बल मांसपेशियाँ और कमजोर सहनशक्ति ने संकेत दिया कि उसे सहायता की आवश्यकता है। अच्छे डॉक्टर ने राजकुमार को स्वस्थ करने के लिए पौष्टिक भोजन और टॉनिक लेने का परामर्श दिया, लेकिन कुछ भी काम नहीं आया। वह अभी भी दुर्बल और अविकसित रहा। राजा बहुत चिन्तित हो गया और कोई समाधान चाहता था। एक दिन, सौभाग्य से, एक परिव्राजक साधु राजा के महल में आये। उनका भव्य स्वागत किया गया और उन्हें राजकीय अतिथि गृह में ठहराया गया। साधु के पास अवलोकन करने की अद्भुत शक्ति थी। उन्हें शीघ्र ही राजा की चिन्ता का पता चला और उन्होंने राजकुमार की सहायता करने की इच्छा प्रकट की। उसने राजा से एक दक्ष मूर्तिकार को बुलाने के लिए कहा। जब मूर्तिकार आया, तो साधु ने उससे एक पूर्ण वयस्क, सुगठित व्यक्ति की एक प्रतिमा बनाने को कहा। वे एक पूर्ण आकार की प्रतिमा चाहते थे जिसमें पूरी तरह से सुगठित मांसपेशियाँ और द्विशिर पेशी (बाइसेप्स) अच्छी तरह से दृष्टिगोचर हों। मूर्तिकार ने निर्देशानुसार कुछ ही समय में प्रतिमा तैयार कर दी। साधु ने राजकुमार को सम्बोधित किया 'यहाँ देखो, युवक, तुमको इस मूर्ति को अपने कमरे में रखना होगा और जितनी बार सम्भव हो सके इसे देखते रहना होगा।' इतना कहकर साधु चले गये।

राजकुमार ने मूर्ति को अपने कमरे में रख दिया। सुबह जब वह उठता तो उसकी दृष्टि मूर्ति पर पड़ती। कमरे के अन्दर-बाहर जाते समय, बैठते, पढ़ते, खाते और आराम करते समय उसकी दृष्टि उस मूर्ति पर पड़ती। राजकुमार ने एक दिन अन्तर्मन से पूछा, क्या मैं भी ऐसा सुगठित और सुन्दर शरीर बना सकता हूँ? उसने प्रतिमा के समान सुगठित शरीर बनाने की इच्छा विकसित कर ली, जिसकी वह प्रशंसा करता था। शीघ्र ही, उसने सीख लिया कि शारीरिक व्यायाम कैसे करना है, वजन कैसे उठाना है, अपनी माँसपेशियों को कैसे मोड़ना है तथा शरीर-निर्माण के अन्य सम्बन्धित नियमों का पालन कैसे करना और क्यों आवश्यक है। कुछ ही महीनों में वह दुबला-पतला, कंकाल जैसा राजकुमार एक मजबूत, सुगठित फौलादी मांसल शरीर में परिवर्तित हो गया। मूर्ति ने एक दुर्बल को एक बलशाली युवा के रूप में परिवर्तित कर दिया। एकमात्र एक प्रतिमा ने उसकी दुर्बलता को सबलता में बदल दिया।

जीवन के हर क्षेत्र की एक प्रतिमा होती है। प्रत्येक खिलाड़ी की अपनी एक प्रतिमा होती है, उसका पसन्दीदा आदर्श होता है। सिनेमा देखने वाला, वैज्ञानिक, शिक्षक,

राजनेता, एकाउंटेंट, ड्राइवर, यहाँ तक कि चोर, हर किसी की अपनी एक प्रतिमा, एक आदर्श होता है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस स्वामी विवेकानन्द को अपने जीवन का आदर्श मानते थे।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा, 'एक विचार लो। उस विचार को अपना जीवन बना लो – उसके बारे में सोचो, उसके सपने देखो, उस विचार पर जियो। मस्तिष्क, मांसपेशियों, तंत्रिकाओं, आपके शरीर के हर भाग को उस विचार से ओतप्रोत कर दो, और बाकी सभी विचारों को छोड़ दें। यही सफलता का सोपान है।'

विषय यह नहीं है कि आपके पास कोई आदर्श प्रतिमा है या नहीं, बल्कि विषय यह है कि आपके पास कौन-सी प्रतिमा है अर्थात् कौन सा आदर्श है। क्या आपका 'आदर्श' आपको यथार्थ मनुष्य बनाता है? क्या यह आपकी सभी आश्यकताओं का ध्यान रखता है? इसी प्रकार व्यक्ति को अपना आदर्श चुनना चाहिए। एक बार जब कोई आदर्श (रोल मॉडल) चुन लिया जाता है, तो कोई भी व्यक्ति वैसा बन सकता है। ○○○

महादेवस्तवनम्

(छन्दः – शिखरिणी)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

सुधायाता पुण्या हरिचरणसम्भूतसलिला
जटाबन्धे गंगा विलसति पवित्रा सुरसरित्।
शशांकः क्षीणो मस्तकमणिवरो भूषणकृतः
महादेवं श्रेष्ठं निहितमनसा स्तौमि तमहम्।।१।।

– श्रीविष्णु के चरण से उत्पन्न पुण्य जलरूपा जो अमृत भूलोक में आई, वह पवित्र नदी गंगा जटासमूह में शोभित होती है और (जिसने) दुबले चन्द्र को अपने मस्तक के उत्तम मणि के रूप में आभूषण बना लिया, मैं एकाग्र मन से उस श्रेष्ठ महादेव की स्तुति करता हूँ।

ललाटे लिप्तं वैष्णवतिलकरेखं त्रिनयनो
गले मालावद् वासुकिफणधरं धारयति यः।
विषं पीतं दृष्ट्वा धरणिदहनव्याकुलकुलं
महादेवं श्रेष्ठं निहितमनसा स्तौमि तमहम्।।२।।

– जो तीन नेत्रों वाले महादेव वासुकि नाग को गले में माला समान धारण करते हैं, जिसने लालट पर वैष्णव तिलक धारण कर रखा है और धरती के जल जाने से व्याकुल (देव, ऋषि आदि) कुल को देखकर विष-पान कर लिया, मैं एकाग्र मन से उस श्रेष्ठ महादेव की स्तुति करता हूँ।

करे शूलं दुष्टासुरदमनहेतोर्भयहरं
प्रमोदे काले तड्डमरुवदनं प्रीतिजननम्।
सदानन्दी नन्दिर्धवलवृषराजो वहति यं
महादेवं श्रेष्ठं निहितमनसा स्तौमि तमहम्।।३।।

– जिसके हाथ में दुष्टों-असुरों के दमन के लिए भयहारी शूल है और आनन्द के समय उसका प्रीतिकारक डमरू वादन होता है, जिसे सदानन्द में रहनेवाले धवल वर्ण के वृषभराज नन्दी वहन करते हैं, मैं एकाग्र मन से उस श्रेष्ठ महादेव की स्तुति करता हूँ।

गणानां कल्याणाय विचरति सर्वत्र सुलभो
ददाति प्रेतेभ्यो भवतरणमन्त्रं पशुपतिः।
चिताचूर्णैः श्वेतैः धवलितशरीरं हिमसमं
महादेवं श्रेष्ठं निहितमनसा स्तौमि तमहम्।।४।।

– जो पशुपति अपने भक्त-गणों के लिये विचरण करते हुए सब जगह सुलभ हो जाते हैं और मरे हुए को भवतारक मन्त्र प्रदान करते हैं। श्वेत चिताभस्म से बर्फ समान धवलित देह वाले उस श्रेष्ठ महादेव की मैं एकाग्र मन से स्तुति करता हूँ।

मदीये चित्तेऽस्मिन् यदभिलषितं तत्शृणु वरं
मनोराज्यं शिष्टान् मम गणयुतो मन्मथजयी।
तवादेशाधीनं विकसतु हृदम्भोजकुसुमं
महादेवं श्रेष्ठं निहितमनसा स्तौमि तमहम्।।५।।

– मेरे मन में जो अभिलाषा है, वह वर सुनिये आप कामविजयी अपने गण के साथ मेरे मनोराज्य पर शासन करें। मेरा हृदयकमल आपके आदेश के अधीन विकसित हो। (इसलिए) मैं एकाग्र मन से श्रेष्ठ महादेव की स्तुति करता हूँ। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (४३)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

द्वितीय मात्रा (उ) की उपासना का फल

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते।।५/४।।

अन्वयार्थ – अथ यदि (यदि वह), द्विमात्रेण (द्वितीय-मात्रा-विशिष्ट अर्थात् 'उकार' अक्षर द्वारा ओंकार का ध्यान करता है), मनसि (स्वप्नात्मक मन में), सम्पद्यते (तादात्म्य-भाव प्राप्त करता है); स: (तो वह) (देहान्त होने पर) यजुर्भि: (द्वितीय मात्रा रूप 'उकार' के रूप में यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा), अन्तरिक्षम् (अन्तरिक्ष में स्थित द्विमात्रा-रूप) सोमलोकम् (सोमलोक अर्थात् चन्द्रलोक में) उन्नीयते (ले जाया जाता है), स: सोमलोके (वह चन्द्रलोक में), विभूतिम् (ऐश्वर्य को) अनुभूय (अनुभव करके), पुन: (फिर), आवर्तते (मनुष्यलोक में लौट आता है)।।४।।

भावार्थ – यदि वह, द्वितीय-मात्रा-विशिष्ट अर्थात् 'उकार' अक्षर द्वारा ओंकार का ध्यान करता है, तो (स्वप्नात्मक) मन के साथ तादात्म्य-भाव प्राप्त करता है; वह देहान्त होने पर (द्वितीय मात्रा रूप 'उकार' के रूप में) यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा, अन्तरिक्ष में स्थित (द्विमात्रा-रूप) सोमलोक अर्थात् चन्द्रलोक में ले जाया जाता है। चन्द्रलोक में वह ऐश्वर्य को अनुभव करके फिर (मनुष्यलोक में) लौट आता है।।४।।

भाष्य – अथ पुन: यदि द्विमात्रा-विभागज्ञो द्विमात्रेण-विशिष्टम्-ओंकारम् अभिध्यायीत स्वप्नात्मके मनसि मननीये यजुर्मये सोमदैवत्ये सम्पद्यते एकाग्रतया-आत्मभावं गच्छति।

भाष्यार्थ – अब यदि कोई ओम् के दूसरे अक्षर ('उ') का ज्ञाता होकर, उस (द्विमात्रा-विशिष्ट) ओंकार का ध्यान करता है, तो इसके फलस्वरूप वह मन के साथ एकाकार होकर उस आत्मभाव को प्राप्त हो जाता है, जिसके चन्द्रमा अधिष्ठातृ-देवता हैं, जिसकी कल्पना स्वप्न-अवस्था के रूप में की जाती है और जिसे यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा पहचाना जाता है।

भाष्य – स: एवं सम्पन्नो मृतो-अन्तरिक्षम् अन्तरिक्ष-आधारं द्वितीय-मात्रा-रूपं द्वितीय-मात्रा-रूपै: एव यजुर्भि: उन्नीयते सोमलोकम्।

भाष्यार्थ – इस प्रकार की अनुभूति से सम्पन्न व्यक्ति, मरने के बाद उस द्वितीय अक्षर (उकार) के द्वारा, यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा उन्नीत होकर, उस चन्द्रलोक में ले जाया जाता है, जो (पृथ्वी तथा स्वर्ग के बीच स्थित) अन्तरिक्ष का आधार और द्वितीय अक्षर (उकार) का ही स्वरूप है।

भाष्य – सौम्यं जन्म प्रापयन्ति तं यजूंषि इत्यर्थ:। स: तत्र विभूतिम् अनुभूय सोमलोके मनुष्यलोकं प्रति पुनरावर्तते।।४।।

भाष्यार्थ – अर्थात् यजुर्वेद के मन्त्र उसे चन्द्रलोक में जन्म प्राप्त कराते हैं। वह उस चन्द्रलोक की विभूतियों का अनुभव लेने के बाद, लौटकर पुन: मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करता है।।५/४।। **(क्रमश:)**

ठाकुर पर विश्वास रखो। वे तुम्हारी विपदाओं से रक्षा करेंगे और तुम्हें मानसिक शान्ति देंगे। ईश्वर के नाम का स्मरण करो और ठाकुर के उन कष्टों का ध्यान करो, जो उन्हें दूसरों के बुरे कर्मों के फलों को स्वीकार करने के कारण भोगना पड़ा था और तब तुम देखोगे कि तुम्हारा शरीर और मन पवित्र हो गया है। यदि तुम केवल इतना स्मरण करो कि कैसे परम पवित्र और भगवत् स्वरूप ठाकुर ने दूसरों के लिए व्याधियाँ सही हैं तथा इन घोरतर व्याधियों के बीच एक क्षण के लिए भी वे भगवदीय आनन्द और जगन्माता के भुवनमोहन स्वरूप के चिन्तन से विरत नहीं हुए, तो तुम्हारे सारे दुख और कष्ट नगण्य हो जाएँगे।

– श्रीमाँ सारदा देवी

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

नारी शिक्षा में श्रीमाँ सारदा का योगदान

रीता घोष, बैंगलुरु

श्रीमाँ सारदा का आर्विभाव १९वीं सदी में भारत-भूमि में उस समय हुआ, जब सम्पूर्ण भारतवर्ष एवं भारतीय समाज दासत्व, कुसंस्कार, अन्धविश्वास तथा अशिक्षा के घोर तमसाछन्न रात्रि से गुजर रहा था। आत्मविश्वास खोकर भारतवासी पराधीन तो थे ही, साथ ही आपसी कलह के कारण परस्पर सम्मान का पूर्ण रूप से अभाव हो गया था। नारी जाति की दुर्दशा तो और भी अवर्णनीय थी। नारी को दुर्बल, असहाय, दूसरे पर निर्भर मानकर उनकी पूर्णत: अवहेलना होने लगी थी। स्त्रियाँ केवल भोग्य वस्तु बनकर रह गई थीं, पर प्राचीन भारत की परम्परा ऐसी नहीं थी।

जब हम वैदिक युग की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो पाते हैं कि उस युग में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय नारी-पुरुष में भेदभाव नहीं किया जाता था। नारियों को पुरुषों के समान ही मर्यादा प्राप्त थी। वैदिक साहित्य में भी इस बात की पुष्टि मिलती है, महिलाओं को जितना सम्मान वैदिक काल में मिलता था, आज भी उसकी कल्पना करना कठिन है। जहाँ आज भारत में महिला शिक्षा दर मात्र ६५ प्रतिशत है, वहीं प्राचीन काल में शिक्षा एवं अन्य कई स्तरों पर लिंग-भेद बिलकुल नहीं था। इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है कि हमारे समाज में पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल-विवाह और अनेक कुरीतियाँ, वैदिक काल के बाद प्रचलित हुई हैं। प्राचीन भारत में शिक्षा, राजनीति, युद्ध, संगीत, कला, लेखन और अन्य सभी क्षेत्रों में महिलाओं की पूर्णत: अबाध भूमिका थी। उस युग में लोपामुद्रा, घोषा, शचि, अपाला, गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी नारियाँ ब्रह्मविद्या में पारंगत व पारदर्शी थीं।

१. लोपामुद्रा – ये वैदिक काल की एक दार्शनिक थीं। ऋग्वेद का १७९वाँ सूक्त, उनके और उनके पति अगस्त्य के बीच हुए संवाद को दर्शाता है। पारिवारिक जीवन का महत्त्व समझने से लेकर ललितसहस्त्रनाम के प्रचार-प्रसार और महाभारत में लोपामुद्रा का नाम आता है।

२. शचि – ये इन्द्र के दरबार की ७ मन्त्रिकाओं में से एक थीं। इन्द्र को शचि-पति कहा जाना यह दर्शाता है कि ये उस समय की एक महत्त्वपूर्ण महिला थीं।

३. घोषा – इन्हें अध्यात्म और दर्शन का अच्छा ज्ञान था। ये मंत्रादि में निपुण थीं। इन्हें वैदिक विज्ञान भी ज्ञात था।

४. अपाला – अपाला अत्रि मुनि की पुत्री थीं। ऋग्वेद में आठवें मंडल के साथ ७ सूक्त (८.९१) उनके द्वारा इन्द्र से कही गई प्रार्थना और वार्तालाप है। अपाला अपनी बुद्धिमत्ता के कारण सम्पूर्ण राज्य में प्रसिद्ध थीं।

५. गार्गी – गार्गी वाचकन्वी (ऋषि वचकनु की पुत्री) एक प्राचीन भारतीय दार्शनिक थीं। उन्होंने अत्यन्त वीरता के साथ ऋषि याज्ञवल्क्य को आमन्त्रित कर ब्रह्मविषयक तत्त्व पर तर्क प्रस्तुत कर ऋषि को पराजित किया था। इस सभा में हजारों विद्वान ब्राह्मण उपस्थित थे।

६. मैत्रेयी – ये ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी थीं। हजारों वर्ष पूर्व मैत्रैयी ने अपनी विद्वता से न केवल नारी जाति का सम्मान बढ़ाया, बल्कि उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि नारी पत्नी-धर्म का निर्वाह करते हुए भी ज्ञान-अर्जन कर सकती है।

इस प्रकार प्राचीन भारत की ये विदुषी रमणियाँ अपनी विद्वत्ता व योग्यता के बल पर समाज में पुरुष के समान ही सम्मान एवं उच्चादर्श का स्थान रखती थीं।

स्वामी विवेकानन्द अपने Education and women नामक प्रबन्ध में Education by Swami Vivekananda page 51, 56, 58, 59, 60) में लिखते हैं कि 'वेदान्त यह

स्पष्ट रूप से कहता है कि केवल एक ही सत्ता सभी जीवों में विद्यमान है, परन्तु क्षमता के लोभी पुरुषों ने अपना आधिपत्य स्थापित करने हेतु वेदान्त से पृथक् कुछ कठिन नियमों का निर्माण कर नारियों को बंधनग्रस्त कर दिया। स्त्रियाँ केवल संतानोत्पादन का यंत्र बनकर रह गईं।'' नारियों के इस अध:पतन के बारे में तत्कालीन पुजारी व पुरोहितों का षड्यन्त्र भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन पुरोहितों ने जाति विशेष (पुरुष-वर्ग) को ही वेद आदि शास्त्रों के अध्ययन का अधिकार दिया था।

नारी जाति को उसके पूर्वोक्त समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया। मनस्मृति में कहा गया वाक्य – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' को सम्पूर्ण रूप से भुला दिया गया, बल्कि इसके विपरीत आचरण नारी-जाति के साथ किया जाने लगा। कुछ मुट्ठीभर मनुष्यों ने शिक्षा तथा ज्ञान को अहंकार एवं स्वामित्व का क्षेत्र बनाकर उस पर एकाधिपत्य कर लिया। फलस्वरूप स्त्री-जाति समाज में निमज्जित होते-होते अत्यन्त निम्नस्तर पर जा पहुँची। नारी को दासत्व की बेड़ी में जकड़कर, उनकी स्वतन्त्रता का हरण कर, उसे केवल भोग्य सामग्री समझा जाने लगा।

अपने 'भारत का पुनर्गठन' नामक पुस्तक में इसी विषय पर चर्चा करते हुए स्वामीजी लिखते हैं – ''भारत की अवनति का मुख्य कारण इस देश की नारी-शक्ति की अवहेलना है।'' शक्ति की अवहेलना ने देश को शक्तिहीन बना दिया है।

बालिकाओं का अत्यन्त कम आयु में विवाह कर दिया जाता था। कम आयु में ही उन्हें मातृत्व का बोझ वहन करना पड़ता था। कम आयु में ही वे विधवा बनकर जीवनभर समाज और परिवार की प्रताड़ना झेलती रहती थीं। इसके साथ ही शिक्षा के अभाव में उनकी जन्मी संतान भी उपेक्षित, दुर्बल, अशिक्षित, संस्कारशून्य, पशुवत् जीवन जीती थी, 'शिक्षाविहीना जन्तु समाना'। इस प्रकार भारत मेरुदण्डहीनों का देश बन गया था। जिस देश में माताओं का सम्मान न हो, वह देश सुपुत्रों को जन्म कैसे दे सकता था?

१९वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि कई महान समाज सुधारकों ने नारी शिक्षा तथा नारी जाति के उत्थान के लिए प्रयास अवश्य किया था, परन्तु इन लोगों ने नारी शिक्षा को अध्यात्म से अलग रखा था। साथ ही नारी को आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर या स्वावलम्बी बनाने की ओर से वे सभी उदासीन थे। अत: उन लोगों के प्रयासों का कोई ठोस परिणाम नहीं निकल सका। उस समय भारत में स्वाधीनता संग्राम का दौर प्रारम्भ हुआ, जिसमें विपल्वी क्रान्तिकारियों के आह्वान से कुछ नारियाँ स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने लगी थीं। ब्राह्म समाज जैसे आधुनिक भावापन्न कुछ परिवारों की स्त्रियाँ शिक्षा में रुचि लेने लगीं और बिना सोच-विचार के पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित होकर अर्थोपार्जन करने में और विदेश जाकर पढ़ाई आदि करने में अधिक सार्थकता का अनुभव करने लगीं। केवल अर्थार्जन करनेवाली विद्या में रुचि के कारण मूल्यबोध, कर्त्तव्यबोध, राष्ट्रीयताबोध आदि को उन्होंने खो दिया। इस प्रकार यहीं से दिशाहीन खोखला आधुनिक समाज का जन्म हुआ।

विलुप्त होती हुई भारतीय संस्कृति तथा उपेक्षित नारी जाति की ऐसी कठिन परिस्थिति में, श्रीमाँ सारदा ने अपनी अतुल्य सौम्यता, गहन विश्लेषणात्मक विचार-शक्ति, मानसिक दृढ़ता तथा संवेदनात्मक मूल्यबोध द्वारा जड़ता, संकीर्णता से जर्जर भारतीय संस्कृति एवं नारी-समाज के सम्मुख सम्मान, स्वाधीनता तथा समानता के पथ को पुन: शिक्षा के प्रकाश से आलोकित करने का एक नीरव, नि:शब्द आन्दोलन प्रारम्भ किया।

सामान्य शिक्षित ग्राम्य जीवन व्यतीत करनेवाली लज्जाशीला, सर्वदा स्वयं को छुपाए रखनेवाली माँ सारदा असाधारण व्यक्तित्व की अधिकारिणी थीं। श्रीमाँ के प्रयास के बिना सम्भवत: भारतीय नारी जाति के उत्थान में युगों बीत जाता। शिक्षा के प्रति श्रीमाँ के मन में सदा से आग्रह बना हुआ था। ग्रामीण समाज के नाना प्रकार के विधि-निषेध के बाद भी सारदा देवी बचपन में अपने भाइयों से पुस्तक लेकर उसे पढ़ने का प्रयास करती थीं। वे छ: वर्ष की आयु में विवाह होने के पश्चात् कामारपुकुर ग्राम में आईं। वहाँ श्रीरामकृष्ण देव की भतीजी लक्ष्मीदीदी की पुस्तक लेकर वह पढ़ती थीं। उन्हें पुस्तक पढ़ते हुए देखकर श्रीरामकृष्ण देव का भांजा हृदयराम ने उनके हाथ से पुस्तक छीन ली और उन्हें डाँटने लगा। हृदय राम का कहना था कि नारियाँ शिक्षित होने से कहानी, उपन्यास आदि पढ़ेंगी, तो उनका चरित्र बिगड़ जाएगा, जैसाकि तत्कालीन समाज की सोच थी। इस विषय पर श्रीमाँ ने स्वयं कहा था – 'वर्ण परिचय'

थोड़ा-थोड़ा पढ़ती थी, पर भांजे ने पुस्तक छीन ली, पर लक्ष्मी ने पुस्तक नहीं छोड़ा। मैं भी छिपाकर एक दूसरी पुस्तक मँगवाकर पढ़ती थी। लक्ष्मी पाठशाला से पढ़कर आकर मुझे पढ़ाती थी।'' श्रीमाँ के शब्दों से पता चलता है कि दक्षिणेश्वर आने के पश्चात् उन्हें थोड़ी और अच्छे से पढ़ने की सुविधा मिली। भव मुखर्जी की कन्या गंगा स्नान करने के लिए आती थी, तो श्रीमाँ को पढ़ाकर जाती थी। श्रीमाँ उसे गुरुदक्षिणा के रूप में बगीचे में उगनेवाली शाक-भाजी आदि दिया करती थीं। इस प्रकार विद्याभ्यास से श्रीमाँ क्रमशः पढ़ना सीख गईं। तत्पश्चात् वह रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थ पढ़ने लगी थीं। भारतीय सनातन आर्दश के बारे में सारदा देवी स्वयं के प्रयत्न से ज्ञानार्जन करने लगीं। उनके ज्ञानलाभ करने के स्रोत और भी कई थे – जैसे कि साधु-संतों की संगत, गाँव के वयस्क तथा पास-पड़ोस जनों, गाँव में अनुष्ठित होनेवाले नाटक, अभिनय, लोकगीति, कीर्त्तन आदि। इन सभी भारतीय संस्कृति और लोकाचार द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के कारण भी माँ सारदा के चरित्र में कई महत्त्वपूर्ण गुणों का समावेश हमें देखने को मिलता है – जैसा आध्यात्मिकता, मूल्यबोध, कर्त्तव्य बोध, राष्ट्रीयताबोध, धैर्यशीलता, क्षमाशीलता, कुसंस्कारों से मुक्त उदार हृदय एवं सेवापरायणता। श्रीमाँ सारदा की सेवापरायणता देखकर मोहित निवेदिता ने कहा था – ''मेरी दृष्टि में वर्तमान पृथ्वी की महानतम नारी-आदर्श श्रीमाँ हैं।''

श्रीमाँ सारदा का जीवन भारतीय धर्म, संस्कृति-सम्पदा से परिपूर्ण था। एक ओर जैसे वे सनातन हिन्दुत्व की प्रतीक थीं, दूसरी ओर वैसे ही पाश्चात्य की वैज्ञानिक युक्तिसंगत चिन्तन व विचारों का विकास भी उनमें देखने को मिलता है। जैसाकि श्रीमाँ सारदा ने पाश्चात्य शिक्षा की अच्छाई-बुराई पर विचार किए बिना ही उसे ग्रहण करने की विचारधारा का तीव्र विरोध किया था। माँ सारदा अपनी भतीजी राधू-माकू तथा नलिनी आदि की शिक्षा के लिए भी तत्पर रहती थीं और उन्हें अध्ययन के लिए प्रेरित करती थीं। श्रीमाँ उन्हें धर्म-ग्रन्थ आदि पढ़ने के लिए कहती थीं तथा उनसे पत्र आदि भी लिखवाती थीं। विवाह के पश्चात् राधू जब माँ के पास 'मायेर बाड़ी' कोलकाता में रहने के लिए आईं, तो श्रीमाँ ने राधू को अपने मकान के पास की एक मिशनरी विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कर दिया। एक दिन गोलाप माँ ने माँ सारदा से कहा – 'बेटी अभी बड़ी हो गई है, अब उसे विद्यालय में पढ़ने के लिए जाने की क्या आवश्यकता है?' इसका उत्तर देते हुए माँ सारदा ने कहा – ''कितनी बड़ी हो गई? जाने दो, पढ़ाई-लिखाई, शिल्पकला ये सब सीखने से बहुत काम आता है, जिस गाँव में ब्याही गई है, ये सब जानने से अपना एवं वहाँ दूसरों का भी भला कर पायेगी, है न?

इसी प्रकार एक दूसरे दिन की बात है – एक महिला-भक्त ने श्रीमाँ से कहा – ''मेरी पाँच बेटियाँ हैं, माँ ! परन्तु उन सबका विवाह नहीं कर पाई हूँ, बड़ी चिन्ता में हूँ।'' इस पर श्रीमाँ सारदा ने कहा – ''विवाह नहीं करा पाई, तो इतनी चिन्ता करने से क्या होगा? निवेदिता के विद्यालय में उन्हें भेज दो, लिखना-पढ़ना सीखेंगी, तो अच्छी रहेंगी।''

माँ की आधुनिक सोच विचार का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण तब मिलता है, जब दुर्गापुरी देवी की अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने के बारे में स्त्रियों में कई प्रकार की बातें होने लगीं। विवाद को बढ़ते देखकर श्रीमाँ ने गौरी-माँ को बुलाकर कहा – ''मेरी बेटी (दुर्गापुरी देवी) अंग्रेजी अवश्य पढ़ेगी। शिक्षा द्वारा मनुष्य स्वयं श्रद्धावान् बनता है तथा दूसरों के प्रति भी श्रद्धाशील होता है। अतः जिस शिक्षा से मनुष्य का चरित्र गठन नहीं होता है, वैसी शिक्षा का श्रीमाँ ने सर्वदा तिरस्कार किया है। नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को श्रीमाँ समझती थीं तथा इस विषय को अत्यन्त महत्त्व भी दिया करती थीं।

सरला देवी, जो बाद में भारतीप्राणा माताजी के रूप में सुपरिचित हुईं एवं श्रीसारदा मठ एवं मिशन की प्रथम अध्यक्षा थीं, वे एक ब्राह्मण कन्या थीं। सरला देवी माँ सारदा की सेविका के रूप में भी जानी जाती हैं।

सरला देवी नर्सिंग ट्रेनिंग के लिए कोलकाता के लेडी डफरिन अस्पताल में जाना चाहती थीं। तत्कालीन समाज में ब्राह्मण कन्या के लिए नर्सिंग प्रशिक्षण अचिन्तनीय बात थी। गोलाप माँ ने नर्सिंग ट्रेनिंग लेने की बात सुनकर अत्यन्त असन्तुष्ट होते हुए कहा – ''ब्राह्मण कन्या को अस्पताल में काम करने के लिए भेजा जा रहा है, – यह तो सर्वथा अनाचार है। उसके हाथ से खाना कौन खाएगा?'' परन्तु श्रीमाँ ने इस बात पर सम्पूर्ण अविचलित रहते हुए सरला देवी के निर्णय पर अपनी सन्तुष्टि व्यक्त करते हुए उनका (सरला देवी का) पूर्ण समर्थन किया। श्रीमाँ ने सरला देवी को इस सेवा-कार्य के लिए प्रेरित करते हुए उनका उत्साह-

वर्धन किया। पढ़ाई-लिखाई या अन्य कार्यों द्वारा महिलाएँ आत्मनिर्भर होकर स्वयं की जीविका अजर्न करें, यही श्रीमाँ सारदा की आन्तरिक इच्छा थी। चिन्तन की स्वतन्त्रता और कर्म की स्वाधीनता ही प्रगति और समृद्धि की ओर मनुष्य को ले जाती है और नारी जाति के लिए भी इन्हीं बातों का होना आवश्यक है।

भारतीय स्त्रियों के लिए शिक्षा की कितनी आवश्यकता है?

श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था, ''...अच्छी शिक्षा तथा देवभक्ति के प्रभाव से ही वे (स्त्रियाँ) सुरक्षित रहती हैं...। (श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग-७४)

भारतीय नारियों के लिए शिक्षा की कितनी आवश्यकता है, इस बात का स्वामी विवेकानन्द ने भी अनुभव किया। श्रीमाँ सारदा देवी के आशीर्वाद की शक्ति को ढाल बनाकर स्वामी विवेकानन्द अमेरिका पहुँचे और विश्व-विजयी बने। तत्पश्चात् स्वामीजी ने पश्चिमी देशों की महिलाओं की स्थिति और भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति का गहराई से अध्ययन किया। पश्चिमी देशों में नारियों की सर्वत्र मान्यता, सम्मान व उनके अधिकार को सामाजिक रूप से बहुत अधिक मूल्य दिया जाता है। इस बात को स्वामीजी अनुभव करते हुए अपने ''शिक्षा और नारी'' नामक प्रबन्ध में लिखते हैं – ''सभी पाश्चात्य देशों ने नारी-जाति को उपयुक्त सम्मान प्रदान कर अपनी महानता को चरितार्थ किया है, जहाँ महिलाओं का सम्मान नहीं होता है, वह देश कभी भी महान नहीं बन सकता है।''

दूसरी ओर प्राचीन समय से भारत में यह माना जाता है कि ईश्वर सर्वत्र हैं एवं शक्तिरूप में नारियों में वे प्रकाशित हैं। भगवान श्रीराम सीताजी के बारे में कहते हैं –

आदि शक्ति जेहि जग उपजाया।
सो अवतरेहु मोर यह माया।।

''आदि शक्ति जिसने सारे संसार की सृष्टि की है, वही मेरी माया के रूप में, मेरी शक्ति के रूप में उत्पन्न हुई है।''

भारत में शक्ति की पूजा तो होती है, पर साकार-सचल शक्ति के रूप को स्वीकार नहीं किया जाता है। शक्ति के सम्मान के बिना परिवार, समाज या देश का उद्धार सम्भव नहीं है। भारत में कन्या-भ्रूण की हत्या हो रही है तथा कन्या-संतान जन्म लेने से ही उसे दुर्बल असहाय मान लिया जाता है, पर ऐसा क्यों? स्वामीजी कहते हैं – ''हमारी नारियाँ भी उतनी ही सक्षम हैं, जितनी दूसरे देशों की नारियाँ हैं। नारियों को इस बात का अनुभव कराया जाना चाहिए तथा विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि वे कितने सक्षम, शक्तिशाली हैं। स्वामीजी मानते थे कि भारतीय नारियों की बहुत सारी समस्याएँ हैं और उन सभी समस्याओं के समाधान के लिए एक ही जादुई शब्द है – 'शिक्षा'। पुत्र के समान पुत्री को भी समान यत्न एवं ध्यान से शिक्षा और सहयोग देने की आवश्यकता है। स्वामीजी कहते हैं – शिक्षा ही एक ऐसा साधन है, जो नारी-जाति में जागरूकता ला सकती है। शिक्षा द्वारा नारी-जाति अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ही खोज लेने में समर्थ हो जाएँगी। परिस्थिति से जूझने व संकट में सम्भलने की क्षमता शिक्षा ही प्रदान कर सकती है। इसलिए राष्ट्र को सबल बनाने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा की आवश्यकता है।

स्वामीजी का विचार था कि नारियों की शिक्षा धर्म-केन्द्रित होनी चाहिए। स्वामीजी का यह विचार हमारे राष्ट्र एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में कितना सही है, यह अवश्य वर्तमान समय में समझा जा सकता है। धर्म को केन्द्र में रखकर जिस शिक्षा की नींव रखी जाएगी, मनुष्य-चरित्र के निर्माण में वह सर्वथा सहायक सिद्ध होगी। नारी विवाहित हो अथवा न हो, परन्तु धर्म उसके मौलिक चरित्र को बनाने में सुदृढ़ता, शक्तिशाली एवं दृढ़ता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा।

इसके लिए गाँव, शहरों में नारी शिक्षा केन्द्रों की आवश्यकता है, जहाँ उन्हें इतिहास, पुराणों की कथाएँ, घर की व्यवस्था, कला, कर्त्तव्य-कर्म एवं जीवन को उन्नत बनाने के सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाया जा सके। इसके अलावा सिलाई-कढ़ाई, घरेलू काम-काज एवं बच्चों की सही देख-रेख की शिक्षा को भी महत्त्व देना चाहिए। इसके साथ ही पूजा, जप-ध्यान आदि को भी जीवन का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

स्वामीजी ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात बतायी, वह है – नारियों में वीरता एवं नेतृत्व का भाव जाग्रत करना। आत्मरक्षा करने की क्षमता तथा अन्याय से लड़ने का साहस उनमें अवश्य होना चाहिए। भारत की वीरांगनाओं में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्या बाई आदि कई महान नारियाँ हैं, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर शौर्य एवं साहस का

अद्भुत प्रदर्शन कर भारत का सम्मान बढ़ाया है।

स्वामीजी के विचारों को भारत में कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्हें मार्गरेट नोबल जैसी महिला की आवश्यकता थी। इसीलिये स्वामीजी ने मिस मार्गरेट नोबल को भारत आने की प्रेरणा दी। स्वामीजी कहते थे – 'भारतीय नारी-समाज को जाग्रत करने के लिए एक सिंहनी की आवश्यकता है' और वह सिंहनी निवेदिता अर्थात् मार्गरेट नोबल थी, स्वामीजी के विचार और आदर्श को साकार रूप देने में निवेदिता का योगदान अतुलनीय था। तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी का सामाजिक उत्थान और उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना बहुत सरल नहीं था। परन्तु अपने अदम्य उत्साह और अथक प्रयास द्वारा निवेदिता ने इस असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया।

मार्गरेट नोबल जैसी विदेशिनी आईरिश महिला का भारत आगमन एवं भारतीय जीवन को अपनाने जैसे कठिन कार्य को सहज बनाने में श्रीमाँ सारदा की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रही। श्रीमाँ की हृदय की विशालता एवं उदारता तथा सर्वोपरि आधुनिक भावापन्न मानसिकता का परिचय उस समय मिलता है, जब स्वामी विवेकानन्द के आह्वान पर आयरलैंड में जन्मी पली-बढ़ी मार्गरेट नोबल ने भारत की भूमि पर पैर रखा। स्वामीजी इस बात को लेकर बहुत चिन्तित थे कि भारत में उनका स्वागत कैसा होगा? भारतीय समाज उन विदेशिनी को किस प्रकार से ग्रहण करेगा। लेकिन स्वामीजी की चिन्ताएँ तब दूर हो गईं, जब मार्गरेट से मिलते ही माँ सारदा ने उन्हें बड़े ही प्रेम से अपना लिया, उन्हें अपने पास बैठाकर खिलाया-पिलाया। उन दिनों एक विदेशिनी के साथ उठना-बैठना समाज में अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। कट्टर ब्राह्मण परिवार की होती हुई भी श्रीमाँ समाज की रोष-दृष्टि की उपेक्षा करते हुए मार्गरेट को अपनी बेटी 'खूकी' कहकर बुलाया और उनके प्रत्येक कार्य का समर्थन करती रहीं। श्रीमाँ का समर्थन स्वामीजी एवं निवेदिता के लिए बहुत बड़ा आशीर्वाद था। इस प्रकार निवेदिता जिस लक्ष्य को लेकर भारत आई थी, उस पर आगे बढ़ती गई। श्रीमाँ एवं स्वामीजी के समर्थन से निवेदिता ने बालिकाओं के लिये एक विद्यालय की स्थापना की। १३ नवम्बर, १८९८ काली पूजा की पावन तिथि पर १६ नं. बोसपाड़ा लेन, बागबाजार, दक्षिण कोलकाता में अपने निवास स्थान पर निवेदिता ने विद्यालय स्थापित किया। विद्यालय-स्थापना के दिन श्रीमाँ सारदा ने स्वयं उपस्थित होकर विद्यालय का शुभारम्भ किया। श्रीमाँ निवेदिता के विद्यालय से बड़ा प्रेम करती थीं। वे बीच-बीच में वहाँ जाकर छात्राओं से मिलती रहती थीं एवं उन्हें प्रोत्साहन दिया करती थीं। प्रारम्भ में विद्यालय में लोग अपनी कन्याओं को भेजना नहीं चाहते थे। बहुत प्रयासों के पश्चात् विद्यालय में पढ़ने के लिए कुछ बालिकाओं ने आना प्रारम्भ तो किया, परन्तु 'मेम' के स्कूल में पढ़ने के अपराध के कारण विद्यालय से आने के पश्चात् स्नान करने अथवा गंगाजल से शुद्ध करने के बाद ही उन्हें गृह में प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त होती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे नारी-जागरण का एक काल श्रीमाँ, स्वामीजी और निवेदिता के प्रयास से प्रारम्भ हुआ। सुधीरा देवी आदि निवेदिता के आदर्श से प्रेरित होकर नारी-शिक्षा कार्य में सम्मिलित हुईं तथा इसे ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था।

श्रीमाँ सारदा चाहती थीं कि कोआलपाड़ा आश्रम में भी नारी-शिक्षा के प्रचार का कार्य हो, पर उपयुक्त शिक्षिका के अभाव में यह कार्य बाधित हो गया।

अब तक जन मानस में एक अस्थिरता पैदा हो गई थी। अन्त:पुर में नारियों में मुक्ति की लालसा बढ़ने लगी थी। लोग समाज-सुधार एवं नारी-स्वाधीनता के विषय में सोचने लगे थे, परन्तु इस विषय की सीमा-रेखा कहाँ तक हो यह विचार की वस्तु, मीमांसाहीन थी। श्रीमाँ द्वन्द्वों में द्वान्दातीत थीं। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे – ''वह सारदा, सरस्वती है, लोकशिक्षा देने के लिए रूप को ढककर आई है।'' श्रीठाकुर का यह कथन सम्पूर्ण सत्य है। इसे श्रीमाँ ने सिद्ध कर दिखाया। तत्कालीन सामाजिक जीवन के कुसंस्कार, अन्धविश्वास आदि से ऊपर उठकर अत्यल्प शिक्षित होते हुए भी श्रीमाँ ने शिक्षा के महत्त्व को रूढ़िवादी परिवारों और दिशाहीन समाज के समक्ष उजागर करके दिखाया। इसीलिए भविष्य के समाज की नारी की आदर्श-प्रतिमा माँ सारदा को देखकर निवेदिता ने कहा था – ''माँ सारदा भारतीय नारी-आदर्श के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की अन्तिम वाणी हैं।'' श्रीमाँ ने शालीनता, सभ्यता को बनाए रखते हुए मानसिक दृढ़ता, आधुनिक विचार और जीवन के सामंजस्य

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (३०)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

लक्षास्तु गुरवः सन्तु शिष्यो नैकोऽपि दृश्यते।
बहवो ह्युपदेष्टारः स्वल्पा यथोक्तकारिणः।।२५।।

– ''गुरु मिलें लाख लाख, चेला मिले न एक।'' उपदेशक बहुत मिलते हैं, किन्तु उपदेश जैसा आचरण करनेवाले, ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं।

यथार्थतोऽनुरागश्चेदीश्वरे हृदि कस्यचित्।
साधन-भजनादीनां मन्यते स प्रयोजनम्।।२६।।
ईश्वरः सद्गुरुं तस्मै सद्यः प्रापयते ध्रुवम्।
साधकश्चिन्तयेन्नैव गुरोर्हेतोरतः परम्।।२७।।

– यदि किसी के हृदय में वास्तव में भगवान से प्रेम हो और वह साधन-भजन की आवश्यकता का बोध करे, तो ईश्वर निश्चित ही उसे सद्गुरु की प्राप्ति करा देते हैं। इसलिये साधक को गुरु की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

त्रिविधा विहिता वैद्या उत्तममध्यमाधमाः।
भुङ्क्ष्वौषधमिति प्रोच्य नाडीं परीक्ष्य गच्छति।।२८।।
ततस्तद्भक्षितं सम्यङ् न भक्षितमनेन वा।
नागच्छति न जिज्ञासुर्वैद्योऽधमोऽभिधीयते।। २९।।

– वैद्य तीन प्रकार के होते हैं – उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी दबाकर 'औषधि खाना' कहकर चला जाता है, उसके बाद रोगी औषधि ठीक से खाया कि नहीं, उसका कोई समाचार नहीं पूछता, अर्थात् न आकर देखता है, न सूचना प्राप्त करता है, तो वह अधम वैद्य कहा जाता है। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

को अपने जीवन में साकार करके दिखाया। श्रीमाँ सारदा में जितना शाश्वत भारतीय नारी का भाव था, उतना ही उनमें संस्कारमुक्त चित्त की उदारता का स्फुरण देखने को मिलता है। इसीलिये असाधारण व्यक्तित्व की धनी श्रीमाँ ने नीरव, निःशब्द भावान्दोलन द्वारा समाज के गहनतम अन्तस्तल पर हलचल मचाकर, वर्षों से नारी पर हुए अविचार की जमी हुई काई को हटाकर जैसे नवोदित शिक्षा की रश्मि से उसे आलोकित कर उदभासित कर दिया। स्वामी विवेकानन्द की भावना, निवेदिता का प्रयास, श्रीमाँ सारदा के समर्थन और सहयोग से एक नई नारी-चेतना, नारी-जागरण का युग प्रारम्भ हुआ। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ : १. उद्बोधन पत्रिका - २०१७ **२.** श्रीश्रीमाँ सारदा देवी – शान्तिपद गंगोपाध्याय **३.** श्रीश्रीमायेर कथा **४.** शतरूपे सारदा **५.** सीतादेवी से श्रीमाँ सारदा देवी, विवेक-ज्योति, २०१६ **६.** Education – Swami Vivekananda **७.** Rebuilt India – Swami Vivekananda **८.** Wikipedia

हे भगवान ! तू दया का सागर है

बाबूलाल परमार

हे भगवान ! तू दया का सागर है ।
तेरी महिमा, यत्र-तत्र-सर्वत्र उजागर है।।
तेरे नाम अनेक अनुपम, हे नट नागर है ।
मुझ सेवक की भी भर देना एक गागर है ।।
तू सबका मालिक, दाता एक ईश्वर है ।
तू सबका परम पिता परमेश्वर है।
तेरी कृपा पर ही हम सब निर्भर हैं।
तेरी पूजा हो रही, हर घर-घर है ।।
तेरी पूजा में भक्त-गण, लगे परस्पर हैं।
तेरे नाम के जप में, सब निरन्तर तत्पर हैं ।।
तेरे ही ध्यान में तन्मय, ऋषि मुनिवर हैं ।
तेरे ही गुणगान के भगवन, गूँज रहे स्वर हैं।।
सम्पूर्ण सृष्टि में कृपा-दृष्टि की, तेरी फैली लहर है ।
तेरी छत्र-छाया में भगवन्, सबका गुजर-बसर है ।।
तू ही भूले-भटके का एक मात्र बस रहबर है।
बाबूलाल के दुख-दर्द की, क्या तुझे नहीं खबर है।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – यह तो एक राजकुमार की वीरता की कहानी हुई। अवतार कहाँ?

उत्तर – शैशव काल में अलौकिक कीर्ति, माता को अलौकिकता (दिव्यता) का प्रदर्शन। किशोरावस्था में अस्वाभाविक वीरता और बुद्धिमत्ता का निदर्शन तथा प्रेमिक–आकर्षण शक्ति, कहीं भी अपनी ओर से अभिमान नहीं। कैसे अप्रितम त्यागी। कंस-वध करते हैं, जरासंध-वध करते हैं, किन्तु सिंहासन नहीं चाहते। शिशुपालकृत अपमान को भी आँख मूँद कर सहन करना, राजसूय यज्ञ में सबका चरण धोना, स्वयं वीरश्रेष्ठ होकर भी सारथी बनना, कुरुक्षेत्र का युद्ध न हो, इसके लिए उन्होंने कितना प्रयत्न किया ! युद्ध में योगदान – युद्ध में क्षत्रिय का आह्वान करने पर चुनौती स्वीकार करनी पड़ती है। अर्जुन और दुर्योधन; दो विरोधी विचार के हैं। यही घटना है।

उनका दैनन्दिन कार्यकलाप था ध्यान, दान-दक्षिणा, स्वागत-सत्कार वार्तालाप।

२१ अगस्त, १९६६

सेवक – सम्भवत: आपको माँ का ज्योतिर्मय दर्शन हुआ था न?

महाराज – उस समय मैं पटना में था। समाचार मिला कि माँ का देहान्त हुआ है। अन्तिम काल की बातें लिखकर भेजने को कहा था। अन्तिम काल में माँ की दृष्टिशक्ति चली गई थी। मृत्यु के समय वे बोल पड़ी थीं – 'अरे' मैं क्या देख रही हूँ – प्रकाश क्यों हैं।'' समझ में आया कि इतना प्रकाश गीतोक्त है –

अग्निर्ज्योतिरह: शुक्ल: षण्मासा उत्तरायणम्।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जना:।।

२५-०८-१९६६

दोपहर के भोजन के बाद महाराज सोए हुए हैं। समय १२ बजे। अचानक आग्रह करने लगे अरे, मुझे बैठा दो। क्यों? मैं तो विश्वनाथजी के मन्दिर में हूँ। वहाँ बेंच पर बैठकर सभी जप कर रहे हैं। मुझे बैठा दो, जप करूँगा।''

महाराज को पकड़कर बैठाया गया।

महाराज – छोड़ दो, तभी तो जप करूँगा।

सेवक – छोड़ देने से आप गिर जाएँगे।

महाराज – किन्तु यह तो बैठाना नहीं हुआ। मुझे छोड़ दो, बैठने दो।

अन्तत: तकिए की टेक लगाकर बैठाया गया। कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। फिर बोले – 'सुला दो।'

दोपहर एक बजे का समय।

सेवक – क्या आपने जप किया?

महाराज – कैसा प्रश्न कर रहे हो?

सेवक – आपसे प्रश्न नहीं करूँगा, तो और किससे करूँगा, बताइए?

महाराज – इष्टमन्त्र जप और इष्टमूर्ति का ध्यान करता हूँ। मेरे इष्ट कभी साकार हो जाते हैं – श्रीरामकृष्ण मूर्ति।

सेवक – निराकार इष्ट कैसे हैं?

महाराज – जप का मन्त्र और उसका बीज, केवल यही ध्वनि। आज निराकार इष्ट का जप किया हूँ।

सेवक – महाराज, श्रीरामकृष्ण को सर्वत्यागी कहने से क्या समझ में आता है?

महाराज – यही मानो ठाकुर के कान, नाक और आँखें इस प्रकार की नहीं है। मेरे ठाकुर एक चैतन्य हैं। जैसे थाली ईश्वर है, कटोरी ईश्वर है, वैसे ही जितने सृष्ट पदार्थ हैं, सब ठाकुर की सत्ता से बने हुए हैं। जब तुम ध्यान-जप का समय-सुयोग पाओगे, तब सब समझ सकोगे, तुम्हारा सिद्धान्त पक्का है।

सेवक – ठाकुर को पाऊँ या न पाऊँ, किन्तु संसार से इस मन को हटाकर रहने में ही जीवन सार्थक होगा।

महाराज – हाँ, यही तो।

सेवक – महापुरुष महाराज की बात याद है?

महाराज – खूब याद है। विजयादशमी के दिन विजया के बाद हम लोगों ने गाना गाया था। अतिथि कक्ष में मैंने गाना गाकर सुनाया था। वह गाना स्मरण नहीं है, किन्तु उसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुये थे। एक बार मठ में नीचे बैठकर गाना गाया था। एक रिकार्ड का गाना था। ऊपर बैठकर महाराज ने सुना था। बाद में वे मुझसे पूछा था, 'क्या तुमने उन व्यक्ति विशेष से सीखा है?'

मैंने कहा, ''नहीं।'' ''सुनते-सुनते सीखा है।'' वे बोले, ''ठीक हुआ है, बहुत अच्छा हुआ है।''

अतिथि कक्ष में एक दिन भजन हो रहा था। 'उद्‌बोधन' के सम्पादक तबला बजा रहे थे, किन्तु ताल ठीक नहीं होने पर महाराज आकर, बायाँ तबला लेकर बोले, ''इस तरह बजाओ।'' ऐसा कहकर दिखाकर चले गए। उस समय तक महापुरुष महाराज, परमाध्यक्ष नहीं हुए थे। अपने कक्ष में बैठे थे। मैं दक्षिण ओर के दरवाजे के पास खड़ा था। तब वे बोले, ''वहाँ चोर की तरह, कौन खड़ा है।'' मैंने कहा – मैं इन्द्र दयाल हूँ। उन्होंने पूछा, ''क्या करने आए हो'' मैं बोला – ''आपकी थोड़ी सेवा करने का सुअवसर पा जाऊँ।''

महाराज बोले, ''नहीं, मेरी कोई सेवा नहीं करनी होगी।'' फिर भी चुपचाप खड़े होकर उन्हें देख रहा था। तब उन्होंने इस प्रकार की एक मुख मुद्रा से चिढ़ाया। मैं और कुछ न कहकर, चुपचाप कुछ देर खड़े रहकर चला आया।

एक दिन अतिथि कक्ष में बैठकर, 'अरूप सायरे' भजन गाकर उन्हें सुनाया था। उन्होंने दूर से सुनकर कहा था – 'अनुभव नहीं होने पर ऐसे भजन की रचना नहीं की जा सकती।''

काफी आयु हो गई, अब स्मरण नहीं है। मैंने कहा था – मैं संन्यास पाना चाहता हूँ। वे बोले, ''अच्छा जाओ, कल होगा। अनंग के साथ परामर्श करो।'' अनंग महाराज बोले, 'बहुत अच्छा।' अनंग महाराज ने पुरोहिती किया। संन्यास के बाद मैं बोला, ''सिलहट छोड़कर कहीं गया नहीं। काशी जाऊँगा।'' वे बोले, ''जिसको जहाँ जाना है, जाओ, यहाँ भीड़ मत करो। अच्छा जाओ। वहाँ अधिक दिनों तक मत रहना।'' मेरा, गंगाधर महाराज और भव महाराज का एक साथ संन्यास हुआ था।

स्वामी बुधानन्द अमेरिका के किसी सेन्टर में जानेवाले थे। जाने के पहले काशी आए थे। वे विश्वनाथ-दर्शन और वरिष्ठ साधुओं के दर्शन करने के उद्देश्य से आए थे। एक दिन प्रेमेश महाराज के कक्ष में आए। महाराज से उन्होंने पूछा, ''महाराज, उस देश में जाकर तो केवल व्याख्यान देना होगा। नए-नए विचार कहाँ से पाऊँगा? कैसे पाऊँगा?''

महाराज – तुम कॉलेज में परीक्षा के पूर्व जिस प्रकार पाठ्यक्रम के विषयों को पढ़ते थे, उसी प्रकार 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, माँ की बातें, रामकृष्ण पूँथी और श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ना। स्वामीजी को तो पढ़े ही हुए हो। बारम्बार पढ़ते रहना और सोचना, तब देखोगे कि किसी विचार का अभाव नहीं रहेगा।

काशीवास के अन्तिम कुछ वर्षों में महाराज पूरी तरह से अन्धे हो गए थे। दोनों पैर तो बहुत पहले ही निष्क्रिय हो गए थे, दोनों हाथों में भी कुछ पकड़ने की क्षमता नहीं रही। शौच, मूत्र-त्याग भी दूसरों की मदद से। ऐसी अवस्था में एक दिन सेवक ने प्रश्न किया – आप तो जन्मान्ध नहीं हैं, अब संसार का कुछ भी नहीं देख पा रहे हैं, क्या इससे कष्ट नहीं होता?

महाराज हँसकर बोले – ''तुम बताओ न, देखने की कितनी अच्छी संसार में चीजें हैं?'' **(क्रमशः)**

जप को कोई समय-असमय नहीं है। जब कभी समय मिले, तभी उनका नाप-जप करना। चलते-चलते उनके नाम का मन-ही-मन स्मरण करना। उस समय हाथ या माला द्वारा जप तो सम्भव नहीं है, क्योंकि लोग देख लेंगे। भगवान का नाम-जप खूब छिपाकर करना चाहिये, जिससे किसी को मालूम तक न हो। उनका स्मरण-मनन प्रतिक्षण करते रहना। एक अभ्यास जमा लो। चलते-फिरते, खाते-सोते, यहाँ तक कि सब काम-काज करते हुए भी उनका स्मरण-मनन निरन्तर करने रहना, मानो अन्तःस्रोत बह रहा हो। इस प्रकार कुछ दिन अभ्यास करने पर देखोगे कि तुम्हारे बिना जाने भी, यहाँ तक कि नींद में भी जप चल रहा है, स्मरण-मनन भीतर ही भीतर चल रहा है।

– स्वामी शिवानन्द जी महाराज

मूर्त-महेश्वर : स्वामी विवेकानन्द

चम्पा भट्टाचार्य, भिलाई

देवभूमि भारत धर्म और दर्शन की पुण्यभूमि है। आदिकाल से अब तक अनेक बार भगवान यहाँ नररूप में अवतरित हुए, जिनसे जन-मानस युगों-युगों तक प्रभावित रहा। फिर भी हिन्दू पौराणिक कथानसुार त्रिदेव प्रधान माने गए हैं। इनमें ब्रह्मा – सृष्टिकर्ता, विष्णु – पालनकर्ता और महेश्वर - संहारकर्ता कहलाए। संहारकर्ता शब्द का अर्थ है कि सृष्टि को ठीक से संचालित करने के बाधक तत्त्वों के नाशकारक। हम सभी जानते हैं कि समुद्र-मंथन के समय निकलनेवाले विष को स्वयं ग्रहण करके पृथ्वी को विषरहित करनेवाले महेश्वर हैं।

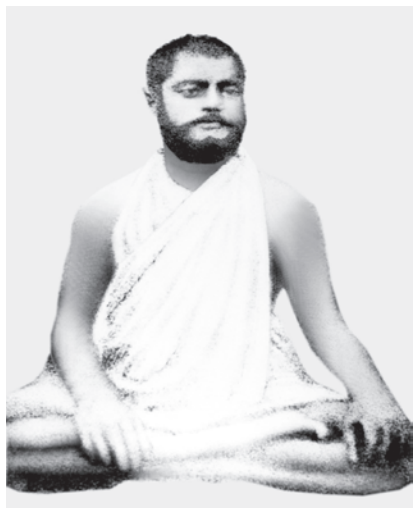

किन्तु मूर्त-महेश्वर कौन हैं? अर्थात् वह महान ईश्वर, जिसे हम देख सकें या जिनका आकार हो, रूप हो, वही मूर्त महेश्वर हैं। स्वामी विवेकानन्द का ही पर्याय है मूर्त महेश्वर। अब मन में विचार आता है कि क्या स्वामी विवेकानन्द ने पृथ्वी को विषरहित किया? दृढ़ता से इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है कि 'हाँ'। उन्होंने एक नहीं अनेक प्रकार के विषों से विश्व को मुक्त करने का प्रयास किया।

अब मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि कौन-कौन से विष से उन्होंने विश्व को मुक्त करने का प्रयास किया? यदि स्वामी विवेकानन्द के जीवन का अवलोकन किया जाये, तो पायेंगे कि उन्होंने कितने प्रकार के विषों से इस जगत की रक्षा करने का प्रयत्न किया। उसके कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं –

१. अशिक्षा रूपी विष से भारत को मुक्त करने के लिए शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर स्वामीजी ने बहुत जोर दिया। अशिक्षा के अन्धकार में डूबे भारतियों के लिए 'मनुष्य निर्माणकारी शिक्षा', कौशल विकास शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा को उन्होंने महत्त्व दिया। नारियों में व्याप्त अशिक्षा को समाप्त करने के लिए आइरिश 'मार्गरिट नोबेल' (भगिनी निवेदिता) को नारी-शिक्षा हेतु भारत लाकर निवेदित किया। जिन्होंने घर-घर जाकर ज्ञान-ज्योति जलाने के लिए निरन्तर अथक परिश्रम किया। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – ''शिक्षा से ही मानव में पूर्णता आएगी और सबका सर्वांगीण विकास होगा। उनके मतानुसार शिक्षा नवयुवकों में प्राणवायु का काम करेगी।''

२. स्वामी विवेकानन्द ने विश्व धर्म महासभा में भारत की ओर से सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व किया था। स्वामीजी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने व्याख्यान से भारत की आध्यात्मिकता से परिपूर्ण वेदान्त-दर्शन से पाश्चात्य देशों को परिचय कराया। स्वामी विवेकानन्द वेदान्त के विख्यात और प्रभावशाली गुरु हैं। विश्वधर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान से पहले सभी विदेशी लोग भारत को कुसंस्कारी, रूढ़िवादी ही जानते थे। परन्तु ध्यानसिद्ध, ज्ञानस्वरूप स्वामीजी ने विदेशियों की सोच बदल दी। पाश्चात्य जगत को भारतीय तत्त्वज्ञान का सन्देश देकर स्वामीजी ने भारत को गौरवान्वित किया। विश्व धर्म महासभा के मंच से स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय वेदान्त का सहज सरल अर्थ समझाते हुए कहा था कि मनुष्य के सच्चे स्वरूप को जानना। वेदान्त का यही संदेश है कि तुम व्यक्त ईश्वर के रूप में अपने भाई की उपासना नहीं कर सकते, तो तुम उस ईश्वर की उपासना कैसे करोगे? देश से हार्दिक प्रेम करनेवाले विवेकानन्द को देश और विदेश में बहुत अपमान सहना पड़ा, परन्तु वे अपने लोक-कल्याण के पथ पर अडिग रहे।

३. स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतीय समाज में व्याप्त नकारात्मक विचार को बदल कर सकारात्मक विचारों से लोगों की आत्मशक्ति को जगाया। उनके सकारात्मक विचारों से प्रभावित होकर कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी का कथन

है – अगर आप भारत को जानना चाहते हैं, तो विवेकानन्द को पढ़िए, उनमें सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि कभी 'नहीं' मत कहना, क्योंकि तुम अनन्त स्वरूप हो, सर्वशक्तिमान हो।

४. स्वामी विवेकानन्द ने पुरोहितवाद, ब्राह्मणवाद, धार्मिक कर्मकाण्ड और रुढ़ियों की खिल्ली उड़ाई और लगभग आक्रामक भाषा में ऐसी विसंगतियों के विरुद्ध बिना अस्त्र-शस्त्र के युद्ध किया। उनके विचारानुसार करोड़ों भूखे-प्यासे, दरिद्र, कुपोषण के शिकार लोगों की मन्दिर के देवी-देवतओं के समान पूजा करनी चाहिए। स्वामीजी कहते हैं, तुम कहते हो – मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। अतिथिदेवो भव। मैं कहता हूँ – दरिद्रदेवो भव। मूर्खदेवो भव। अज्ञानीदेवो भव।

५. स्वामी विवेकानन्द ने भारत की दीन-हीनता, दुर्बलता, अन्धविश्वासरूपी विष की भर्त्सना की। स्वामीजी ने पराधीन भारत को उसके लिए जो सर्वाधिक व्यावहारिक और आवश्यक विचार प्रदान किया था, वह था – आत्मविश्वास। जीवन में आत्मविश्वास चाहिये। जीवन में आत्मविश्वास हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकता है। स्वामीजी ने कहा था – जिसे अपने आप पर विश्वास नहीं, वह नास्तिक है। इस युग में भारतीयों को उनकी मोहनिद्रा से जगाने के लिए स्वामी विवेकानन्द से बढ़कर कोई नहीं। स्वामीजी के विचार भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में प्रेरणास्त्रोत बने।

६. कई वर्षों पूर्व भारतीय समाज के कुछ लोग अपनी क्षुद्र बुद्धि या अहंकार के कारण अपने ही समाज के लोगों को निम्न वर्ग या अस्पृश्य मानकर उनकी उपेक्षा करते थे। इस विचारधारा का खण्डन करते हुए स्वामीजी ने सभी जीवों में परमात्मा हैं, इसलिए मानव जाति की सेवा द्वारा परमात्मा की सेवा की जानी चाहिए, इसकी उद्घोषणा की। इसी सन्दर्भ में अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के 'शिवभाव से जीवसेवा' के विचार को उन्होंने व्रत की तरह अपनाया और सम्पूर्ण विश्व में इसका प्रचार-प्रसार किया। स्वामीजी ने मानव समाज को जाग्रत देवता के रूप में पूजा करने के लिये प्रेरित किया। आदिकाल से भारतीय दर्शन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जयघोष करता चला आ रहा है। अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी हमारा परिवार है, तो भारतीय समाज में विषमता-सर्पविष कैसे व्याप्त हो गया? स्वामीजी ने सुदूर पाश्चात्य में जाकर 'मेरे प्रिय अमेरिकी बहनो और भाइयो' कहकर सभी का हृदय जीत लिया। उन्होंने विश्ववासियों को बताया कि हमारे देश ने सभी पीड़ित और शरणागत जातियों को शरण दी। विभिन्न धर्मों से बहिष्कृत मतावलम्बियों को सहारा दिया।

वेदान्त की आध्यात्मिकता ने धार्मिक कट्टरवाद की सीमा को तोड़ा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – नर नारायण की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है।

यदि विश्व स्वामीजी के द्वारा कथित शान्तिपरक सनातन धर्म की शिक्षा को अपने जीवन में आत्मसात् कर लेता, तो इस संसार में आज आतंकवाद नहीं होता।

उपर्युक्त वक्तव्य की पुष्टि हेतु नरेशचन्द्र घोष की स्मृति-कथा से उदाहरण संकलित है। १९०२ के फरवरी माह में स्वामीजी काशी आए। उन दिनों उनका शरीर दुर्बल था। आराम की आवश्यकता थी। साथ में अनेक सेवक भी थे। शिवरात्रि का दिन था। अर्धरात्रि के समय सेवक दल गंगा-स्नान और पूजा के लिए विश्वनाथ मंदिर गए थे। स्वामीजी अकेले थे। अचानक एक आवाज से स्वामीजी आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने पूछा कौन है वहाँ? मैंने कहा – जी मैं। स्वामीजी ने पास आकर पूछा, तुम नहीं गए? मैंने कहा – आप अकेले हैं, कोई आवश्यकता होगी, इसलिए नहीं गया। स्वामीजी ने आदेश दिया, जा, तम्बाकू ले आ। मैं गया जल्दी-जल्दी तम्बाकू लेकर स्वामीजी को देने गया। घर में प्रवेश करते ही मेरे चक्षु स्थिर हो गए। शरीर काँपने लगा। मैंने देखा, स्वामीजी के स्थान पर जटाधारी, पिंगलवर्ण स्वयं विश्वनाथ ध्यानस्थ थे। मैं तम्बाकू देकर बाहर आया, लेकिन मेरी धड़कनें जोर-जोर से चल रही थीं। ○○○

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में २३ जनवरी, २०२४ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। २४ जनवरी, २०२४ से ३० जनवरी, २०२४ तक आश्रम प्रांगण में श्रीवृन्दावन-धाम के पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी का श्रीमद्-भागवत पर प्रवचन होगा।

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/५)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मन भगवान की सम्पत्ति

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।८।।

मयि मनः आधत्स्व (मुझमें ही मन को लगा) मयि एव बुद्धिम् निवेशय (मुझमें ही बुद्धि को लगा) अतः ऊर्ध्वम् मयि एव निवसिष्यसि (इसके बाद तू मुझमें ही निवास करेगा) संशयः न (इसमें संशय नहीं है)।

''मुझमें ही मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इसके बाद तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें संशय नहीं है।''

'अपना मन और अपनी बुद्धि मैं भगवान को अर्पित करता हूँ', ऐसा कहने भर से ही तो अर्पण नहीं हो जाता। भगवान से जब हम मन अर्पित करने की बात कहते हैं, तब हमारा मन क्या अपना होता है? अपना हो तब तो उसे अर्पित करने की बात कहने की सार्थकता भी है। वास्तव में मन तो भगवान का ही है और हमने उसे भगवान से छीन लिया है। छीनकर उसे अपना मान लिया है। छीनी हुई वस्तु को हम वापस उसी को ही क्यों न लौटा दें?

भगवान ने कहा भी है **मय्येव मन आधत्स्व...** मन को मुझे ही दे दो। भगवान से छीने हुए मन को अपना मानकर ही मानव दुख पाता रहता है। यदि वह मन को उसके असली स्वामी भगवान को लौटा दे, तो मुक्त हो जाए। जैसे किसी विशिष्ट काम को करने के लिए हम किसी से कुछ लें, तो काम हो जाने पर उस वस्तु को लौटा भी तो देना चाहिए। इस प्रकार एक साधन, एक यन्त्र के रूप में हमने भगवान से जो मन पाया था, उसे अपने ही पास रखकर हम विपत्ति में पड़ गये। साधक तो बार-बार मन को भगवान के पास भेजता ही रहता है, पर जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार के कारण उस साधक के पास रहने का मन का जो अभ्यास हो गया है; इसलिये वह भाग-भागकर लौट आता है। साधक भी बार-बार ले जाकर उस मन को भगवान के चरणों में समर्पित करता जाता है। मन को जिसने दिया है, उसी को लौटाता जाता है। इसी प्रकार साधक की साधना चलती है।

अधिकारी-भेद से साधनाओं का क्रम

पहली साधना : अभ्यासयोग

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।९।।

अथ चित्तम् मयि स्थिरम् (यदि तू मन को मुझमें स्थिर करने में) समाधातुम् न शक्नोषि (समर्थ नहीं है) ततः धनञ्जय अभ्यासयोगेन (तो हे अर्जुन ! अभ्यासयोग के द्वारा) माम् आप्तुम् इच्छ (मुझको पाने की इच्छा कर)।

''यदि तू मन को मुझमें स्थिर करने में समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन! अभ्यासयोग के द्वारा मुझको पाने की इच्छा कर।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'अर्जुन ! तुम यदि अपने चित्त को इस प्रकार से मुझमें स्थिर करने में समर्थ नहीं हो, तो मुझको पाने की इच्छा करो।' इसी को कहते हैं अभ्यासयोग। बार-बार जो मन लौट आता है और बार-बार जो उसे भगवान के पास पहुँचाना पड़ता है, दोहराने की इसी प्रक्रिया का नाम है अभ्यास। अभि का अर्थ है चारों ओर और आस का अर्थ है रहना। अर्थात् हम ऐसा प्रयत्न

करें कि हमारा यह जो मन है, चित्त है, वह सदा भगवान के आसपास ही बना रहे। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसके आस-पास हमारा मन घूमता रहे, अपने प्रेमास्पद के ही विषय में सोचता है, उसी की बातें करता है और इन सबमें अद्‌भुत माधुर्य का अनुभव करता है। तो वैसा वह प्रेमास्पद अपने भगवान को ही क्यों न बना लें? उनमें यत्नपूर्वक अपने मन को स्थापित करें। उनको पाने की इच्छा जागेगी, तो मन अपने ही आप उनमें चला जाएगा। मन यदि सौन्दर्य में ही रमता हो, तो भगवान की रूपमाधुरी तो असीम है। यदि मन शौर्यरस का लोभी है या शील-स्नेह को चाहता है, तो सब कुछ के धाम भगवान ही तो हैं। भगवान जैसे भक्तवत्सल और भक्त-पक्षपाती को छोड़कर मन को अन्य कहाँ ले जाओगे? निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः। भगवान अर्जुन से कहते हैं, 'अव्यक्त की उपासनावाला रास्ता क्लेशयुक्त है। इसलिए तू अपने सभी कर्मों का मुझमें संन्यास कर दे, अपने सब कर्मों के फल मुझपर छोड़ दे, तू मेरे परायण हो जा और अनन्ययोग से मेरा ध्यान और मेरी उपासना कर। अर्जुन ! जो ऐसा करता है, उस भक्त के लिए मैं इस मृत्युरूपी संसार-सागर में समुद्धर्ता बन जाता हूँ।' भगवान उसे स्वयं आकर भवसागर के पार ले जाते हैं।

अब यहाँ भगवान बताते है कि किस प्रकार हम अपने चित्त का आवेष्टन उनमें कर सकते हैं। अनायास ही तो हम अपने चित्त को भगवान में डुबो नहीं सकते। तब उसके लिए हमें कैसे साधना करनी होगी, इसका भी विवरण भगवान सुनाते हुए कहते हैं, 'मुझमें ही अपने मन को ले जाकर डुबोकर उसे तू वहाँ बन्धक रख दे। मुझमें अपनी बुद्धि को निविष्ट कर दे। इससे यह होगा कि तू मुझमें ही निवास करेगा। इसके बाद जब तू शरीर को छोड़ेगा, तब मेरे ही धाम को प्राप्त करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है।'

'आधत्स्व' शब्द निकला है 'आधान' शब्द से। आधान का अर्थ होता है 'बन्धक रख देना'। जब किसी वस्तु को ले जाकर हम किसी के पास गिरवी रख देते हैं, तब उस पर से हमारा अधिकार हट जाता है। भगवान का तात्पर्य यह है कि जब हम अपने मन को ले जाकर उनके चरणों में गिरवी रख देते हैं, तो उसके बाद से उस मन पर केवल उनका ही आधार रहता है, हमारा नहीं। भगवान आश्वासन देते हैं कि अपने मन और बुद्धि को जो मुझमें निविष्ट कर देता है, वह निःसंशय रूप से मुझ को ही प्राप्त होता है। जबतक उसका जीवन रहता है, मैं उसके साथ ही साथ रहता हूँ और जब उसका शरीर छूट जाता है, तब वह मेरे ही धाम को प्राप्त करता है।

मन के घटक संकल्प और विकल्प

संकल्प और विकल्प को मन कहते हैं। एक बात मन में आई, तो वह हुआ संकल्प और उसका कोई विरोधी विचार मन में आया, तो वह कहलायेगा विकल्प। भगवान का कहना है कि अपने सभी संकल्प-विकल्पों को हम उनके प्रति समर्पित कर दें। भगवान की पूजा, उनकी आराधना, उनकी सेवा करते हुए या संसार में हम जो भी सेवा करते हैं, उस सबको करते हुए मान लें कि मेरे भगवान का ही रूप तो संसार में व्यक्त है। इसलिए मेरे द्वारा की जानेवाली सेवा मेरे भगवान की ही सेवा है, तो यह हुआ संकल्प का भाव। विकल्प का भाव यह है कि थका-माँदा घर जाकर जब मैं अपने इसी प्रियतम भगवान का ध्यान करूँगा, तब वे यदि मेरे ध्यान में नहीं आए तो? इस प्रकार संकल्प और विकल्प दोनों ही भाव भगवान में ही लग गए, उनको समर्पित हो गए। हमें बस अपने मन में उठनेवाले सभी संकल्प-विकल्पों में भगवान को ही देखना है। अपने मन में उठनेवाले भावों को ईश्वरोन्मुखी बना देना है। यही भक्ति का तात्पर्य है। नारदीय भक्तिसूत्र में कहा गया है कि मन में उठनेवाले काम, क्रोध आदि आवेगों की दिशा यदि ईश्वर की ओर मोड़ दी जाए, तो वही आवेग हमारे लिए ईश्वर-प्राप्ति के साधन बन सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम मन में उठनेवाली संकल्प-विकल्परूपी तरंगों का आधार भगवान को बना लें, तो हमारी किसी प्रकार की हानि न हो। इसीलिए भगवान ने कहा कि अपने मन को मुझे सौंप दो, जिससे वह बिगड़ने से बचा रहे।

मन के साथ बुद्धि का भी नियन्त्रण आवश्यक

किसी बात को यदि बुद्धि ठीक से समझ लेती है, उसकी निश्चयात्मक वृत्ति जाग्रत रहती है, तब हमसे कोई भूल नहीं होती। यदि बुद्धि भगवान में निविष्ट रहे, तो वृत्ति निश्चयात्मक रहे, ठीक-ठीक वर्तन कर सके। बुद्धि की निश्चयात्मिका वृत्ति को प्रेरित करने के लिए हम अल्पकाल से प्रारम्भ करके अपनी बुद्धि को प्रभु में निवेश करके उस काल में केवल उनका ही चिन्तन करने का अभ्यास करें और धीरे-धीरे इस

अवधि को बढ़ाते हुए जाएँ। धीरे-धीरे ये मन और बुद्धि दोनों भगवान की ओर सतत बहने लगते हैं और मन शान्त होने लगता है।

मन के दो विभाग होते हैं। एक ज्ञान का और दूसरा संकल्प का। वेदान्ती कहेगा कि संकल्प का तो त्याग कर दो और ज्ञानांश को भगवान में मिला दो और इस प्रकार हमारा ज्ञान उस परमात्मरूपी ज्ञान से मिलकर एक हो जाएगा। बुद्धि का भी एक भाग तो ज्ञान है और दूसरा वह भाग है, जिसके द्वारा इन्द्रियों के समक्ष उपस्थित विषयों के आकार को बुद्धि ग्रहण कर लेती है। वेदान्ती कहता है कि बुद्धि को विषयाकार ग्रहण करनेवाले भाग को त्यागकर ज्ञानवाले भाग को परमात्मा के ज्ञान के साथ मिला दो। अपने आप में यह एक साधना है। इसको ज्ञान की साधना या ज्ञानयोग कहते हैं। विषयाकार ग्रहण करनेवाली बुद्धि को छोड़कर जब ज्ञान विभागवाली बुद्धि परमात्मा के ज्ञान से एकाकार हो जाएगी, तो उसके फलस्वरूप बाद में दिखाई देनेवाले सभी विषयाकारों में यही ज्ञान अनुस्यूत दिखाई देने लगेगा।

भक्त कहता है, 'देखो भाई ! मेरी बुद्धि की पहुँच तो वहाँ तक नहीं है। सब रूपों में तो भगवान को देख नहीं सकता, इसीलिए भक्त कुछ रूप चुन लेता है। भगवान का जो भी रूप उसे पसन्द है, जो उसका इष्ट हो, उसी रूप में पहले भगवान को देखने का अभ्यास करके बाद में भले ही अन्य सब रूपों में भी अपने भगवान को देखने का प्रयास करे। यह भक्त की साधना है।' अपनी-अपनी जगह दोनों ही साधनाएँ ठीक हैं। यहाँ भगवान अर्जुन से कह रहे हैं कि अपने मन और अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि का निवेश मुझमें कर दो। वैसा करके तुम हर समय मुझमें ही रहोगे, अन्य कहीं भी नहीं जा पाओगे। तुम मुझे ही पा लोगे और देह न रहने पर मेरे ही धाम में आकर मेरे ही साथ रहने का आनन्द भोगोगे। यह भगवान का आश्वासन है।

अपने मन और अपनी बुद्धि को एकदम से तो पूरी तरह भगवान को सौंप देना सम्भव नहीं है, इसलिए इस समस्या के समाधानस्वरूप भगवान ही इसका क्रम बताते हुए कहते हैं, 'हे अर्जुन ! यदि तू अपने चित्त को स्थिररूप से मुझमें समाविष्ट करने में अपने-आपको अभी समर्थ नहीं पा रहा है, तो मुझको पाने की इच्छा रखते हुए तू अभ्यासयोग का आचरण कर। यहाँ अर्जुन के लिए सम्बोधन 'धनंजय' आया है। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिए अर्जुन अपने शौर्य के द्वारा बहुत-सा धन जीत लाए थे। इसलिए उनका यह नाम पड़ा, किन्तु असली धन तो होता है धर्म। **जीवानुगो गच्छति धर्म एकः** – एक धर्म ही जीव के अनुगत रहता है। अर्जुन ने धर्मरूपी धन को जीता था। इसीलिए साक्षात् भगवान उसके साथ-साथ रहते थे। कर्म-संस्कारों की राशि को चित्त कहते हैं। उसी चित्त में ये सारे संस्कार स्मृति के रूप में धीरे-धीरे उठा करते हैं। हमारी सहज प्रवृत्ति का ये निर्माण करते हैं। **(क्रमशः)**

मेघाच्छन्न दिन दुर्दिन नहीं है, वरन् जिस दिन हरिकथामृत का पान नहीं होता, वही दुर्दिन है। सुख के, दुख के भले-बुरे दिन तो बीत जाते हैं, परन्तु जो दिन भगवद् भजन से रहित बीतते हैं, वे वृथा ही आयु का क्षय करते हैं।

तुम्हारा मन भजन में अच्छी तरह स्थिर होता है और आनन्द प्राप्त करता है, यह जानकर मुझे जो सन्तोष हुआ, वह अवर्णनीय है। खूब साधन-भजन करो, उनमें पूरी तरह मग्न हो जाओ, इसी में जीवन की सार्थकता है। देह धारण के लिए जितना कार्य अनिवार्य है, उतना अवश्य ही करना होगा। अतः उसे स्थिर चित्त के साथ करना चाहिए, क्योंकि नाराजी से कोई लाभ नहीं।

वे जहाँ कहीं भी रखे, वहीं पर रहकर प्राणपण से उन्हें पुकारते रहो। स्थान से कोई अधिक अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु ऐसे स्थान में रहना उचित है, जहाँ पर भजन में सुविधा हो। घर में ही साधन-भजन की सुविधा हो, तो फिर किसी दूसरी जगह जाने की क्या आवश्यकता?

हृदय में सर्वदा सद्भाव का पोषण करना। वे सत् स्वरूप हैं। अतः उन्हें हृदय में रख पाने पर कोई भी अभाव नहीं रह जाता। वे ही माँ हैं, पिता हैं, बन्धु हैं, सखा हैं, वे ही विद्या हैं, वे ही धन हैं और वे ही सर्वस्व हैं। इसी भाव के साथ उन्हें अपना लेने पर जीवन मधुमय हो जाएगा।

– स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

वात्सल्य की त्रिमूर्ति श्रीमाँ सारदा

हरेन्द्र सेराड़ी, अलमोड़ा

जननीं सारदां देवीं रामकृष्णं जगद्गुरूम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः।।

सदियों से प्रताड़ित एवं प्रपीड़ित गुलाम भारतीय जन साधारण की मर्मस्पर्शी आहों से वायुमण्डल भारी हो चला था। विदेशी सरकार की दमनकारी नीतियों के जटिल पाश में फँसकर लोगों का दम घुटा जा रहा था। विभिन्न प्रलोभनों और दबावों में पड़कर समाज के विभिन्न स्तर के लोग स्वधर्म छोड़ परधर्मोन्मुख होने लगे थे। हिन्दू धर्म का पर्याय कुछ सामाजिक आचरण मात्र रह गया था; घर की आपसी फूट एक घिनौना रूप धारण कर चुकी थी। भारतीय संस्कृति के राष्ट्रनायक, राष्ट्र की आत्मा व अवतार भगवान राम, कृष्ण, व गौतम बुद्ध का जीवन, आदर्श व चरित्र मात्र एक स्वप्न रह गया था। नफरत, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अत्याचार व गुलामी की चादर ने भारतीय जनमानस के जीवन को अपने आगोश में ले लिया था; ऋषियों द्वारा आविष्कृत वेद-उपनिषद, धर्मशास्त्र व ५००० साल पहले कही गयी कुरुक्षेत्र में भगवान कृष्ण की अमृतवाणी एक उपहार बन कर रह गई। मनुष्य में निहित दिव्यता, प्रेम, करुणा, देशभक्ति व शक्ति का लोप हो गया। ऐसे समय भारत के आध्यात्मिक गगन में युगल देदीप्यमान, महाशक्ति व आदिशक्ति का उदय हुआ – साक्षात् वेदमूर्ति, महाशक्ति, भारतीय दर्शन का जीवन्त विग्रह, विश्व आध्यात्मिकता का प्राण – भगवान रामकृष्ण परमहंस व उनकी शक्ति-महाशक्ति माँ सारदा का।

कोलकाता दक्षिणेश्वर काली मन्दिर से ही रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, आध्यात्मिकता, शक्ति व वात्सल्य की ऐसी लहर उठी, जिसने अंग्रेजी तानाशाही साम्राज्य को हिला दिया। यह एक ऐसी लहर थी, जिसमें भगवान रामकृष्ण की दिव्य वाणी व जगज्जननी सीता-राधा की शक्ति निहित थी। इस बार माँ काली रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा में समाहित होकर गुप्त व रहस्यमय रूप में अपने वात्सल्य की किरण पूरे विश्व में फैला रही हैं। यह सत्य है कि रामकृष्ण परमहंस और उनकी शक्ति माँ सारदा के आगमन से एक नए युग का आगमन हुआ। मानो मृतप्राय भारतीय जनमानस को संजीवनी मिल गई हो। रामकृष्ण परमहंस-माँ सारदा ने इस राष्ट्र में कोई नवीन धर्म स्थापित नहीं किया। युगों से इस भारत में जो सनातन धर्म चला आ रहा है, उसे स्वयं अपनी साधना, समाधि व वात्सल्य की प्रयोगशाला में प्रमाणित करके यह सिद्ध किया कि भारत का सनातन धर्म सत्य है, राष्ट्र का प्राण धर्म है और इसी में भारत राष्ट्र जीवित है। वेद-उपनिषद, धर्मशास्त्रों में ऋषियों द्वारा जो मन्त्र, वाणी उल्लिखित है, वह सत्य है। रामकृष्ण परमहंस की अध्यात्म की प्रयोगशाला में अगर सबसे बड़ी खोज हुई, तो माँ सारदा के रूप में 'शक्ति' की। क्योंकि अध्यात्म के इतिहास में इससे पहले कोई भी प्रसिद्ध सन्त अपने साथ नारी को शक्ति के रूप में कभी भी नहीं लाये; और न ही इससे पूर्व किसी सन्त ने आध्यात्मिक इतिहास में नारी शक्ति को अपने से ऊँचा आधार बनाकर उसकी षोडशी रूप में पूजा की और न ही विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में इससे पूर्व किसी प्रसिद्ध सन्त ने वैवाहिक जीवन यापन करते हुए ईश्वर के साकार-निराकर अस्तित्व को प्रमाणित करके जन समुदाय के बीच प्रदर्शित किया।

माँ सारदा में ऐसा क्या चमत्कार था, जिससे भगवान रामकृष्ण परमहंस माँ सारदा को एक आदर्श गृहिणी, एक आदर्श पत्नी, एक पवित्र साधारण नारी, एक मातृत्व की साक्षात् दुर्गा तथा ज्ञानदायिनी सरस्वती के रूप में हमारे बीच इस कलियुग में स्थापित कर गए हैं। जिसे भक्त, साधु संत, संन्यासी, संन्यासिनी, पशु, पक्षी, जानवर, डाकू, यहाँ तक कि वेश्याएँ भी आकृष्ट होकर माँ के वात्सल्य

संसार में समा जाती हैं। आज भी यह चमत्कार रहस्य से इतना परिपूर्ण है, इतना जीवन्त है कि प्रतीत ही नहीं होता कि माँ शरीर रूप में हमारे बीच नहीं हैं। प्रत्येक वर्ष माँ के जन्मदिन के अवसर पर सबसे अधिक जो सुखद, प्रेम रस व दिव्य भाव से परिपूर्ण अनुभूति होती है; वह है भक्तों के बीच सारदा माँ का दिव्य वात्सल्य, मातृत्व का घनीभूत प्रेम। ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है जैसे पूरी जनता को माँ ने अपने दिव्य वात्सल्य संसार में कैद कर लिया हो। अगर माँ के दिव्य वात्सल्य संसार को जानने की कोशिश करें तो बुद्धि ससीम हो जाती है और अगर पकड़ने की कोशिश करें, तो माँ साधरण से असाधारण बनकर असीम हो जाती हैं। माँ के वात्सल्य का सबसे बड़ा चमत्कार था अपने आध्यात्मिक पुत्र स्वामी विवेकानन्द को ११ सितम्बर, १८९३ के शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन अमेरिका में सफल होने का आशीर्वाद देना। अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस द्वारा बार-बार धर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने के संकेत व निर्देश देने के बावजूद, विवेकानन्द माँ की आज्ञा से ही विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेते हैं। उस अनजान देश के विश्वधर्म सम्मेलन में भारत के प्राचीन सनातन धर्म के इस युवा संन्यासी को कोई निमन्त्रण नहीं था। विश्व के आध्यात्मिक इतिहास में यह पहला व अनोखा विश्वधर्म सम्मेलन था। प्राचीन सनातन धर्म के इस युवा संन्यासी विवेकानन्द के हृदय से मात्र ये पाँच ऐतिहासिक शब्द 'Sisters and Brothers of America' निकले ही थे कि उस विश्वधर्म सम्मेलन में विश्व के श्रेष्ठ ९ धर्मों के प्रतिनिधि व खचाखच भरे ७००० दर्शकों के बीच वात्सल्य का ऐसा प्रभाव छाया कि पूरा सम्मेलन हॉल वात्सल्य के सम्मोहन में समा गया। स्वामी विवेकानन्द ने मात्र शब्द ही तो कहे थे। ऐसा क्या चमत्कार था इन शब्दों में, जिससे पूरा विश्व इस भारतीय युवा संन्यासी की ओर आकृष्ट हो गया। इससे पहले भी बहुत विश्वधर्म सम्मेलन हुए होंगे, परन्तु पहली बार विश्व इतिहास में पूरा विश्व एक प्राचीन सनातन हिन्दू धर्म के युवा संन्यासी विवेकानन्द की ओर क्यों आकृष्ट हुआ? वह इसलिए कि विवेकानन्द में माँ सारदा अपने वात्सल्य रूम में समाहित हो गई थीं। माँ के वात्सल्य रूप से परिपूर्ण व भाव-मग्न होकर स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'माँ मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम्हारे आशीर्वाद से मेरे जैसे अनेक नरेन उत्पन्न होंगे, सैकड़ों विवेकानन्दों की उत्पत्ति होगी। किन्तु साथ ही यह भी जानता हूँ कि संसार में तुम्हारे जैसी माँ एक ही है, दूसरी नहीं।' माँ सारदा वास्तविक रूप में दिव्य वात्सल्य की त्रिमूर्ति थीं, जिसमें भगवान रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द समाहित थे। रामकृष्ण परमहंस माँ सारदा में प्रत्यक्ष माँ काली का रूप देखते थे और कहते हैं वह (श्रीमाँ) सारदा-सरस्वती है, ज्ञान देने आयी है, महा बुद्धिमती है, वह मेरी शक्ति है क्या वह साधारण नारी है?

रामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानन्द की महासमाधि के बाद माँ सारदा ने ३४ वर्षों तक निरन्तर इस विशाल रामकृष्ण मठ व रामकृष्ण मिशन का संचालन किया। क्या आश्चर्य नहीं होता कि एक निरक्षर व साधारण घूँघट ओढ़ी हुई नारी, परतंत्र भारत व अंग्रेजी सरकारों के बीच भारत में तथा विदेशों में रामकृष्ण मठ और मिशन के केन्द्रों का संचालन कर रही है? जहाँ एक ओर माँ रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का संन्यास में मार्गदर्शन किया करती थी, वहीं दूसरी ओर गृहस्थों के दुखः, कष्ट, शोक, वेदना व दरिद्रता का निवारण किया करती थीं। चाहे वह अपने परिवार के भाई की पगली विधवा व लड़की राधू हो या अति वेदना व शोक से व्याकुल समाज का कोई भी व्यक्ति हो। जितना कष्ट, दुख व पीड़ा पगली राधू की माँ ने माँ सारदा को दिया, उतना किसी गृहस्थ के दुख से माँ कभी दुखी नही हुईं। परन्तु इस दुख के बीच माँ सारदा अपने वात्सल्य की किरण बिखरते रहतीं। ऐसा लगता इस कलियुग में माया, मोह, वासना, आसक्ति व दुख श्रीमाँ सारदा के वात्सल्य समुद्र में समा गये हैं। तभी तो विवेकानन्द कहते हैं – 'हमारी माँ आध्यात्मिक शक्ति का एक महान आधार है, यद्यपि बाहर से वे गहरे समुद्र की तरह प्रशांत हैं। उनका आविर्भाव भारत के इतिहास में एक नवयुग की सूचना है। श्रीमाँ भारत में पुनः उस महाशक्ति को जगाने आयी हैं, उनको अवलंबन करके फिर से जगत में गार्गी व मैत्रेयी जन्म लेंगी।' वास्तव में श्रीमाँ महाशक्ति के रूप में नारी जाति को जगाने आयी हैं; अपने को सबसे कमजोर समझनेवाली नारी के नसों व तंत्रिकाओं में वात्सल्य की दिव्य व पवित्रता की शक्ति समाहित करने आयी हैं। नारी जन्म को अभिशाप समझनेवाली स्वयं नारी के रगों में श्रीमाँ जगज्जननी सीता-राधा व पार्वती के दिव्य जीवन के आदर्श व पवित्र चरित्र को समाहित करने आयी हैं। नारी जाति में इस शक्ति का आरम्भ माँ ने अपने जीवनकाल में ही देख लिया, जब भगिनी निवेदिता प्रथम

बार नि:संकोच श्रीमाँ का दर्शन करती हैं और माँ भी किसी विदेशी महिला को प्रथम भेंट में ही अपने वात्सल्य के आँचल में समा लेती हैं। उन दिनों समाज में किसी विधर्मी तथा विदेशी महिला के साथ मेलजोल, भोजन करना पाप समझा जाता था, समाज घोर अंधविश्वास व जातिवाद से घिरा हुआ था। परन्तु माँ के ममतामय प्रेम के आगे यह समाज झुक गया; जब माँ ने इन विदेशी महिलाओं को अपनाकर इनके साथ भोजन किया। माँ के इस दिव्य वात्सल्य रस में डूबते हुए निवेदिता अपने साथ अन्य विदेशी महिलाएँ जोसेफिन, मैक्लाउड, ओलीबुल, क्रिस्टिन, देवमाता को भी लाई थीं। प्रथम दर्शन में ही ये विदेशी महिलाएँ सदा के लिए श्रीमाँ के लिए समर्पित हो गयीं। श्रीमती ओली बूल ही वह प्रथम विदेशी महिला थी, जिसने श्रीमाँ का प्रथम फोटोग्राफ लिया था। विशाल रामकृष्ण मिशन व रामकृष्ण मठ को भारत में तथा विदेशों में जन समुदाय के बीच प्रचारित करवाने का इन्हीं विदेशी महिलाओं का महान योगदान है।

श्रीमाँ सारदा के वात्सल्यमय सान्निध्य में व स्वामी विवेकानन्द की उपस्थिति में भगिनी निवेदिता ने बोस पारा लेन कोलकाता में १३ नवम्बर, १८९८ को काली पूजा के दिन श्रीमाँ सारदा द्वारा आनुष्ठानिक पूजा आदि कराकर निवेदिता बालिका विद्यालय का विधिवत उद्घाटन करवाया और अपने आशीर्वाद-वचनों में श्रीमाँ ने कहा 'इस स्कूल पर देवी माँ का आशीर्वाद हो और यहाँ की लड़कियाँ यहाँ से शिक्षित होकर समाज के लिए एक आदर्श हों।' वर्तमान में कोलकाता का यह 'रामकृष्ण-सारदा मिशन निवेदिता गर्ल्स स्कूल' भारत का एक आदर्श व प्रतिष्ठित स्कूल है। क्या यह आध्यात्मिक इतिहास में एक चमत्कार नहीं है कि एक घूँघट ओढ़े निरक्षर श्रीमाँ भारतीय नारी में शिक्षा का भाव जगा गयीं। तभी तो निवेदिता कहती हैं – 'मैं प्रथम भेंट में हीं माँ की हो गयी और माँ की ममतामयी आँचल में समा गई; जो अत्यन्त सादे तथा आडम्बरहीन वेशभूषा में वे सचमुच ही पृथ्वी की सर्वाधिक शक्तिमयी महानतम नारियों में से एक हैं। प्रेम से परिपूर्ण है हमारी माँ; तुम्हारे प्रेम में हम लोगों के प्रेम की भाँति उल्लास और उग्रता नहीं है, वह प्रेम इस जगत के भौतिक प्रेम जैसा भी नहीं है। परन्तु वह कोमल और शान्त है, जो सबके लिए कल्याणकारी है।' श्रीमाँ सारदा कितनी सजग थीं लड़कियों के शिक्षा के बारे में, वह हमेशा लड़कियों को स्कूल में अध्ययन करने को प्रोत्साहित करती थीं। इसलिए समय-समय पर वह निवेदिता स्कूल में जाकर वहाँ बच्चों के साथ बैठकर बातचीत करतीं। श्रीमाँ के बारे में हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु कहते हैं – 'माँ, मेरी माँ ! 'यतने हृदय रेखो आदरणीय श्यामा माँ को, मन तू ही देख और आमी देखी, आर केऊ ना देखे' यत्न से हृदय में रखो आदरणीय श्यामा माँ को। ऐ मन, उन्हें तू देख और मैं देखूँ – अन्य कोई न देख पाये।'

आज भले ही भारत आर्थिक रूप से निरन्तर आगे बढ़ रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में नए-नए आविष्कार करके, भारत को एक महाशक्ति व राष्ट्र के रूप में विश्व परिदृश्य में आगे कर रहा है, तकनीकी रूप में महारत प्राप्त करके विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। परन्तु इसके बावजूद भारतीय जनमानस के मन में अशान्ति, डर, असुरक्षा, घृणा व राग-द्वेष की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। मानव अपनी दिव्यता को भूलता जा रहा है। राजनीति के चकाचौंध के मोह में फँस कर राष्ट्रधर्म व अध्यात्म को भूलता जा रहा है। इसलिए ऐसे में हमें चाहिए कि हम समस्त भारतीय – ममतामयी, महाशक्ति, आदिशक्ति, जीवन्त दुर्गा, नारी की जीवनी शक्ति, वात्सल्यमयी श्रीमाँ सारदा के जीवन-सन्देश को अपनाएँ और श्रीमाँ को अपनी आराध्य देवी, आदर्श माँ व जीवन मुक्तदायिनी माँ बना लें। अगर इस जीवन को प्रेम से परिपूर्ण, शान्ति से परिपूर्ण, आदर्श से परिपूर्ण तथा निरंतरता से परिपूर्ण बनाना है, तो श्रीमाँ सारदा के दिव्य वात्सल्यमय संसार में आना ही होगा। क्योंकि श्रीमाँ सारदा कह गई हैं – 'जब कोई दुख आए, आघात मिले, विफलता आये, तब यह विश्वास रखना कि मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

श्रीमाँ सारदा की वत्सलता, ममता, करुणा, पवित्रता, मातृत्व, चैतन्य, ज्ञान, आध्यात्मिकता व देवत्व का प्रत्यक्ष रूप में प्रकटीकरण तब हुआ, जब उत्तराखण्ड में कसार देवी के पहाड़ी पर सन् १९९८ में १०८ वर्ष के बाद प्रथम 'सारदा मठ' के रूप में श्रीमाँ का आगमन हुआ और स्वामी विवेकानन्द का सपना पूरा हुआ। क्योंकि इसी कसार देवी पहाड़ी पर सन् १८९० में स्वामी विवेकानन्द जी ने गहन ध्यान किया था और इसी गहन ध्यान की अनुभूति के बीच श्रीमाँ के मठ का सपना देखा था, जो आज सारदा मठ के रूप में निरन्तर अपनी दिव्यता, दिव्य प्रेम, आशीर्वाद, दया व करुणा जन-जन में बिखेर रहा है। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (६०)

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज

१९१७ ई. में राजा महाराज दल-बल के साथ मद्रास से आकर शशी निकेतन, पुरी में रुके थे। हरि महाराज भी महाराज के साथ में थे। कोलकाता से एक भक्त ने एक पार्सल भेजा था। पूजनीय अमूल्य महाराज (स्वामी शंकरानन्द जी) ने मुझे एक पावती देकर कहा, ''रेलवे स्टेशन जाओ और सामान लेकर आओ।'' मैं मार्ग में जाते-जाते सोचने लगा, यह पूछना तो भूल ही गया कि पावती लेकर किसको देना होगा या क्या करना होगा? इसी सोच में मार्ग से चला जा रहा था, उसी समय ब्रह्मचारी श.. के साथ भेंट हुई। उसको पावती दिखाकर कहा, ''भाई, तुम तो यह सब कार्य करते रहते हो, क्या करना होगा, बताओ तो?'' श.. ने कहा, ''पावती स्टेशन मास्टर को देना। तत्पश्चात् पार्सल आने पर स्टेशन मास्टर भेज देंगे।'' बस, मैं स्टेशन मास्टर को पावती देकर वापस आया। जब वापस आया, तब देखा महाराज, हरि महाराज व्यग्र होकर पार्सल के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज ने मुझे खाली हाथ वापस आते देखकर डाँटना आरम्भ किया। वह जीवन की पहली डाँट थी। अभी तो वह स्मृति बहुत मधुर लगती है। पूरे दिन उसी प्रकार डाँट चलती रही। रात्रि में महाराज और हरि महाराज प्रसाद के लिए बाहर के बरामदे में बैठे हुए हैं। मैं पंखा लेकर कीड़े को हटा रहा था। महाराज ने पुन: पार्सल की बात उठायी। हरि महाराज ने हँसते हुए मुझसे पूछा, 'अवनी, तुम समझ पा रहे हो कि महाराज तुमको क्यों डाँट रहे हैं?'' मैंने उत्तर दिया, ''नहीं महाराज, मुझसे क्या गलती हुई है, समझ नहीं पा रहा हूँ?'' तब हरि महाराज ने कहा, ''शिष्य तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम शिष्य गुरु के मन में चिन्तन उदय होने के पूर्व ही मन में समझ जाता है और उसे पूरा करता है। मध्यम शिष्य गुरु का मनोभाव व्यक्त होने के पूर्व ही जानकर उसको पूर्ण करता है। अधम शिष्य गुरु का आदेश मिलने पर उसे पूरा करता है। महाराज चाहते हैं कि तुमलोग उत्तम शिष्य होओ।'' मैं चुपचाप था। महाराज ने तब कहा, ''हरि भाई, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, इसीलिए ये लोग मेरी बात नहीं मानते हैं। आप इनलोगों को शुद्ध बुद्धि दीजिए।''

अप्रैल, १९२२ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की महासमाधि के पश्चात् स्वामी शिवानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ एवं मिशन के संघाध्यक्ष हुए। मैंने उनसे अलमोड़ा में तपस्या करने के लिए एक महीने की छुट्टी माँगी। उन्होंने मुझे अनुमति दी; तत्पश्चात् एक सप्ताह के भीतर ही मुझे बुलाकर कहा, ''देखो, विदेहानन्द सिंगापुर में एक सहयोगी चाहता है। कोई नहीं जाना चाहता। क्या तुम जा सकोगे?'' मैंने कहा, ''हाँ महाराज, मैं जाने के लिए तैयार हूँ। विदेहानन्द मेरे मित्र हैं। मुझे एक महीने का समय दीजिए, काशी में हरि महाराज का दर्शन करके मैं सिंगापुर जाऊँगा।''

१९२२ ई. के जून महीने में मैं काशी में हरि महाराज का दर्शन करने गया और उनको सिंगापुर जाने की बात बतायी। उन्होंने मेरे सिंगापुर जाने की बात को पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, ''संघ के न्यासी लोग यदि तुमको विदेश भेजना चाहते हैं, तो तुमको अमेरिका क्यों नहीं भेजते?'' वास्तव में वही बात हुई। न्यासीगण का मत परिवर्तित हुआ और १९२३ ई. में मुझे अमेरिका के सैन्फ्रांसिस्को भेजा गया।

इसके एक महीने के पश्चात् हरि महाराज महासमाधि में लीन हुए। उस अन्तिम दर्शन के समय मैंने उनकी चरण-सेवा की थी। उन्होंने एक दिन कहा, ''ज्ञान का जितना वितरण किया जाता है, वह उतना ही बढ़ता है।'' लोग जानते हैं कि वे कठोर प्रकृति के साधु थे; किन्तु मुझे उनसे बहुत प्रेम-स्नेह मिला है। मैंने जब उनसे विदाई ली, उस

समय वे बहुत अस्वस्थ थे। मैंने जब उनको प्रणाम किया, तब वे करुणापूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देखते रहे। जब तक मैं उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया, तब तक वे मेरी ओर देखते रहे। श्रीरामकृष्ण के पार्षदों का प्रेम-स्नेह भुलाया नहीं जा सकता।

हॉलीवुड में स्वामी प्रभवानन्द जी दो समय प्रात: १० और अपराह्न ३.३० बजे घूमने के लिए जाते थे। उनके साथ कई भक्त रहते थे। पहले-पहले मैं भी महाराज के साथ जाता था। एक दिन घूमते समय एक प्रौढ़ा महिला ने कहा, ''Swami, We love Chetanananda अर्थात् हमलोग चेतनानन्द को प्रेम करते है।'' महाराज ने परिहास करते हुए कहा, ''Love him but don't fall in love with him. अर्थात प्रेम करो परन्तु उसके प्रेम में फँस मत जाना।'' मुझे अमेरिका की व्यवहार-कुशलता मालूम नहीं थी। थोड़ा-सा असहज अनुभव किया। स्वामी असक्तानन्द और मैंने गाड़ी चलाना नहीं सीखा। महाराज ने ही निश्चय कर दिया था कि कौन-कौन हमे सान्टा बार्बरा लेकर जायेगा। धीरामाता, भगवती आदि वयस्क महिलाएँ हमें ले जातीं थीं।

१९७१ ई. ट्रबूको आश्रम में मैंने प्रभवानन्दजी से कहा, ''महाराज, आपका Sermon on the Mount according to Vedanta बंगला भाषा में अनुवाद होने से अच्छा होता। हमारे पास ऐसी पुस्तक नहीं है।'' उन्होंने साथ-ही-साथ उत्तर दिया, ''तुम उसका अनुवाद करो, जो खर्च होगा उसको मैं दूँगा।'' उनके आदेशानुसार मैंने उसका अनुवाद किया – 'वेदान्तेर आलोके क्रिश्चन शैलोपदेश' वह उद्बोधन से प्रकाशित हुआ।

उस समय महाराज का Narada's Way of Divine Love प्रकाशित होने वाला ही था। महाराज ने कहा, ''तुम तो अद्वैत आश्रम में प्रुफ रिडिंग करते थे। इस पुस्तक का अन्तिम प्रुफ एक बार देख लो।'' आनन्दप्राणा ने कहा, ''Swami, this is now in final stage. Please don't change the matter.'' (स्वामीजी यह अन्तिम रूप में है। दया करके कुछ परिवर्तन मत कीजिए।) प्रूफ रीडिंग करते समय मुझे कुछ गलतियाँ मिली तथा उसे मैंने महाराज को दिखाया। उन्होंने आनन्दप्राणा को उन गलतियों को सुधारने के लिए कहा, हालाँकि उसके लिए कुछ अधिक व्यय हुआ था।

प्रभवानन्दजी के भाई गोकुलचन्द्र घोष विष्णुपुर विद्यालय के हेडमास्टर थे। उन्होंने Narada's Way of Divine Love का बंगला अनुवाद किया। उसे भी महाराज ने मुझे संशोधित करने के लिए कहा। मैंने उसको संशोधित करके उसकी भूमिका लिखी। उद्बोधन कार्यालय से नारदीय भक्तिसूत्र के नाम से वह प्रकाशित हुआ।

जब मैं हॉलीवुड, गया उस समय अमेरिका में हिपि मूवमेन्ट चल रहा था। कई लोग ध्यान सीखने के लिए आते थे। मैंने उनलोगों के लिए Meditation and its Methods : According to Swami Vivekananda का संकलन किया। महाराज ने क्रिस्टोफर ईशरवुड को उस पुस्तक के लिए भूमिका लिखने के लिए कहा। वह पुस्तक Vedanda Press से प्रकाशित हुई तथा उसके कई संस्करण निकल चुके हैं। वह अद्वैत आश्रम से भी प्रकाशित हुई है एवं जर्मन तथा स्पैनिश भाषा में भी प्रकाशित हुई है।

मैं जब पहली बार हॉलीवुड आया (११ जून, १९७१ ई.), महाराज ने एक रविवार के प्रवचन के अन्त में भक्तों के साथ मेरा परिचय करा दिया। मुझे कुछ बोलने के लिए कहा, किन्तु मैं उसके लिए तैयार नहीं था। थोड़ा-सा सामान्य बातें कहकर बैठ गया। भक्तगण बहुत हँसे थे।

तत्पश्चात् मेरा प्रशिक्षण आरम्भ हुआ। महाराज ने कहा, ''देखो, यहाँ पर अनेक महिलाएँ अकेली रहती हैं। उनके निमन्त्रण देने पर कभी भी अकेले मत जाना। यदि कोई भक्त-महिला साक्षात्कार लेना चाहती है, तो उनके आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर देना; उनलोगों के व्यक्तिगत जीवन के विषय में नहीं पूछना। ऋण लेकर कभी भी कोई सम्पत्ति नहीं खरीदना। हम साधु पैसा नहीं कमाते हैं। इस देश में किस्त नहीं देने से बैंक सम्पत्ति ले लेगा। प्रवचन के मंच से कभी भी पैसा के लिए निवेदन नहीं करना। ठाकुर जो देंगे, उसी से सन्तुष्ट रहना। इस देश में क्रिश्चन चर्चों से बार-बार पैसा के लिए निवेदन निकाला जाता है, जिससे लोग बहुत नाराज हो जाते हैं। इस देश में कानून के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना। एक बार पकड़े जाने पर इस देश की मीडिया हमारे नाम-यश को नष्ट कर देगी। अच्छी तरह प्रवचन तैयार करना। तुम्हारा प्रवचन सुनकर लोग आकृष्ट होकर सदस्य बनेंगे। देखो, ये अमेरिका के भक्तगण एक बार, दो-बार, ऐसा कि पाँच बार तुम्हारी बात समझने का प्रयास करेंगे किन्तु उसके बाद भी यदि समझ नहीं पाये, तो ये लोग फिर नहीं आयेंगे। इसलिए, तुम व्याख्यान के लिए प्रशिक्षण लो।

मुझे प्रवचन की शिक्षा देने के लिए महाराज ने एक प्रौढ़ा शिष्या Arline Crane (माधुरी) को नियुक्त किया। इन्होंने स्वामी असक्तानन्द को भी प्रशिक्षण दिया था। माधुरी एक अभिनेत्री थी और उनके पति फिल्म डायरेक्टर थे। उनका जन्म स्कॉटलैंड में हुआ था। उनकी भाषा और शब्द-उच्चारण इतना मीठा और शुद्ध थे, जिसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। उनके मुँह से आतिशबाजी जैसे शब्द निकलते थे। मैंने इतना शुद्ध उच्चारण कभी भी नहीं सुना था। वे विदेशी छात्र तथा वक्ताओं को भी प्रशिक्षण देती थीं। जो भी हो, प्रत्येक रविवार को मैंने क्या-क्या त्रुटी की, वह सुनकर उसका नोट लिखती थी; तत्पश्चात् सप्ताह में एक दिन ग्रीन हॉउस के लिविंग रूम में बैठकर संशोधन कर देती थी। मैं उनके अध्यायों का टेप करके रखता और कमरे में बैठकर अभ्यास करता था। अभी भी वे सब टेप मेरे पास हैं। माधुरी ने एक दिन कहा, ''Swami, when you are inspired, you speak too fast, please slow down, otherwise your American audience will not be able to follow you." (अर्थात् स्वामी, जब आप उत्साहित होते हैं, तो बहुत जल्दी-जल्दी बोलने लगते हैं, कृपया धीरे-धीरे बोलिए, नहीं तो आपके अमेरिकावासी श्रोता आपकी बात को समझ नहीं पायेंगे) माधुरी ने एक दिन परिहास करते हुए कहा, ''आप यदि तेजी से बोलेंगे, तो मैं आपके पैर को रस्सी से बाँधकर खींच दूँगी।'' मैं हँसने लगा। माधुरी १९८४ ई. में कैंसर से मर गईं। मैं कृष्णानन्द के साथ उनके घर में उनको देखने गया था। वे मुझे कई बार थियेटर दिखाने भी ले गयी थी, जिससे मैं अमेरीकियों का संवाद समझ पाऊँ। मैं इस महिला के प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ।

हॉलीवुड में हमारी दिनचर्या थी : तीन बार जप-ध्यान – प्रात: ७-८ बजे, दोपहर १२-१ बजे और सन्ध्या ६-७ बजे। मैं प्रात: और सन्ध्या मन्दिर जाता था। मंगलवार शास्त्र के ऊपर सन्ध्या ८-९ बजे तक एवं बुधवार सन्ध्या ८-९ बजे तक वचनामृत पर कक्षा रहती थी। वचनामृत की कक्षा में क्रिस्टोफर ईश्वरवुड ३० मिनट तक पढ़ाते थे और बाकी आधा घण्टा महाराज प्रश्नोत्तर करते थे। उनका शरीर अस्वस्थ होने पर स्वामी असक्तानन्द या मैं प्रश्नों का उत्तर देता था।

परिधान को लेकर महाराज बहुत सावधान थे। वे स्वयं बहुत परम्परागत पाश्चात्यवादी परिधान पहनते थे; किन्तु प्रवचन या कक्षा के समय गेरुआ वस्त्र पहनते थे। उन्होंने मुझसे कहा था, ''अच्छी दुकान से अपने पसन्दानुसार अच्छा वस्त्र खरीदना।'' अमेरिकी ब्रह्मचारी सत्चैतन्य ने मेरे लिए अच्छा परम्परागत सूट खरीद कर दिया। महाराज ने कहा, ''अमेरिकावासी परिधान को लेकर बहुत सचेत हैं। तुम्हारे फटे-पुराने वस्त्र को देखकर तुमको नीच जाति का समझेंगे। तुम बड़े लोग से नहीं मिल पाओगे।'' महाराज ने अमेरिका में ५३ वर्ष व्यतीत किये थे। उन्होंने अपने दीर्घ जीवन के अनुभव से मुझको बहुत कुछ सिखाया था। मेरा भी इस देश में प्राय: ४७ वर्ष हो गया। अभी अमेरिकावासी परिधान को लेकर बहुत ढीला-ढाला या अनौपचारिक हैं, किन्तु मैं अभी भी उन वरिष्ठ संन्यासी का आदेश पालन कर रहा हूँ।

लिखने के सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे कहा था, ''तुम लिखो। किन्तु अमेरिकावासी से संशोधन कराना। वे लोग उनकी भाषा में वेदान्त को समझना चाहते हैं। वे लोग यदि समझ नहीं पाये या संस्कृत या तकनीकी शब्द को लेकर बारंबार चोट खाये, तो 'इसका कोई मतलब नहीं निकलता है' ऐसा कहकर पुस्तक को बन्द करके रख देंगे, फिर नहीं पढ़ेंगे।'' इसीलिए मैं अपनी सभी पुस्तक ईशरवुड, आनन्दप्राणा इत्यादि को देकर अच्छी तरह से संशोधन करवाकर तब प्रकाशित करता हूँ। फिर भी मैं ध्यान रखता हूँ कि वेदान्त के तत्त्व या सिद्धान्त में कोई परिवर्तन तो नहीं हो रहा है।

'Vedanta and the West' पत्रिका हॉलीवुड से प्रकाशित होती थी। पत्रिका महाराज के सम्पादन में प्राय: ३० वर्ष चली थी। १९७० में सितम्बर महीने में मेरे पहुँचने के ठीक छह महीने पहले बन्द हो गयी। मेरे द्वारा 'Vedanta and the West' की प्रशंसा करने पर महाराज ने कहा, ''देखो, मैं अभी वृद्ध हो गया हूँ; इसके साथ हार्ट अटैक भी हुआ है। अच्छा लेखक नहीं मिल रहा था। पत्रिका का स्तर नीचे होता जा रहा था। इसके अतिरिक्त वह हानि में भी चल रही थी। इसीलिए बन्द करने के लिए बाध्य हो गया। यदि तुम पहले आते तो चलाने का प्रयास करता। 'प्रबुद्ध भारत' और 'वेदान्त केसरी' पत्रिकाओं में पाण्डित्य से परिपूर्ण पृष्ठ रहते हैं। शब्द आडम्बरपूर्ण, अनोखा, तकनीकी शब्दों से परिपूर्ण रहता है। साधारण पाठक समझ ही नहीं पाता है। 'Vedanta and the West' की भाषा सहज और सरल होने से ही सफल हो पाया था।'' **(क्रमश:)**

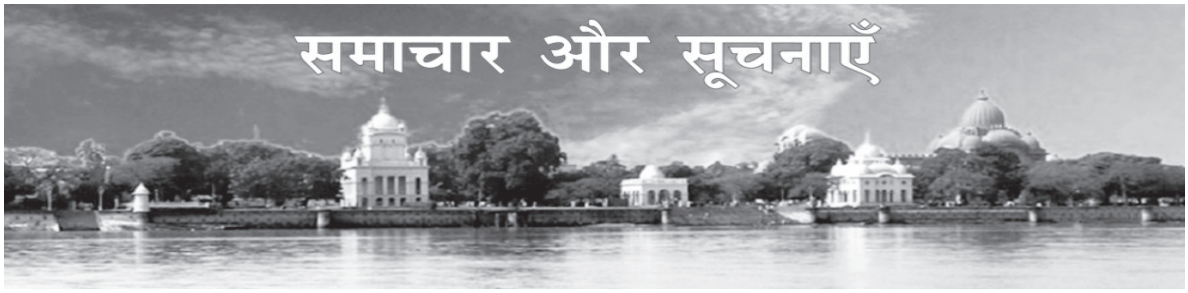

परम पूज्य स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ प्रवास

३ अक्तूबर, २०२३ को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में** रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ चैन्नई के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का पदार्पण हुआ।

४ अक्तूबर, २०२३ सन्ध्या ५ बजे **विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर** में पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी ने 'भगवान श्रीरामकृष्ण देव का संदेश' विषय पर भक्तों को सम्बोधित किया।

पूज्य महाराज ने ५ और ६ अक्तूबर को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर** के श्रीरामकृष्ण मन्दिर में भक्तों को दीक्षा प्रदान की। ६ अक्तूबर को महाराज ने आश्रम के सत्संग भवन में भक्तों को आशीर्वचन प्रदान किया। ७ अक्तूबर, २०२३ को पूज्य महाराज ने **रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर** हेतु प्रस्थान किया। वहाँ ८ और ९ अक्तूबर को महाराज ने भक्तों को दीक्षा प्रदान की। ९ की रात को महाराज जी वापस रायपुर आश्रम आये और १० अक्तूबर को यहाँ से अपनी अग्रिम यात्रा हेतु प्रस्थान किये।

१४ अक्तूबर, २०२३ को **रामकृष्ण मिशन बेलूड़ मठ** के परिसर में रामकृष्ण मिशन की १२५वीं जयन्ती समारोह के उपलक्ष्य में निर्मित वृहद् द्वार का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष तथा रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया। उसी दिन पूज्यपाद महाराज जी ने संघ के उपाध्यक्ष महाराज के निवास हेतु **'रामकृष्णानन्द भवन'** का भी उद्घाटन किया। इस अवसर पर स्वामी भजनानन्द जी, स्वामी गिरीशानन्द जी, महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी और अन्य संन्यासी और ब्रह्मचारी उपस्थित थे।

बेलूड़ मठ में नवनिर्मित द्वार

बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा

२१ से २४ अक्तूबर तक **रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ** में अत्यन्त आनन्द के साथ श्रीदुर्गापूजा का आयोजन किया गया। हजारों भक्त पंडाल में श्रीमाँ दुर्गा का भव्य दर्शन और आशीर्वाद पाकर धन्य हुये। कुल लगभग एक लाख बयालिस हजार भक्तों को प्रसाद प्रदान किया गया।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली में श्रीदुर्गा पूजा का शुभारम्भ किया गया। पूजा में प्रतिदिन बहुत से भक्तों की भीड़ रही। मंत्री श्रीमती मीनाक्षी लेखी और अन्य गणमान्य लोगों ने पूजा में भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर में भव्य दुर्गापूजा का आयोजन किया गया, जिसमें बहुत से भक्तों और रामकृष्ण मिशन, नारायणपुर, रामकृष्ण मिशन, रायपुर, रामकृष्ण मठ, राजकोट और अन्यान्य केन्द्रों के संन्यासी-ब्रह्मचारियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, राजकोट में २९ सितम्बर, २०२३ को पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने 'विवेकानन्द इन्स्टिट्यूट आफ वैल्यु एजुकेशन एन्ड कल्चर बिल्डिंग' के दूसरे मंजिल का उद्घाटन किया। इस तल का उपयोग कोचींग क्लास, कम्प्यूटर ट्रेनिंग और अन्य कार्यों के लिये किया जायेगा।

११ अक्तूबर, २०२३ को **रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन** में स्टाफ क्वार्टर के द्वितीय तल का उद्घाटन पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया।

१५ अक्तूबर, २०२३ को **रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर** में नव-विस्तारित श्रीरामकृष्ण मन्दिर का उद्घाटन पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया। इस अवसर पर विशेष पूजा, साधु भण्डारा और सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया।